आर्यसमाज के महामानव

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए-

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

संस्करण : 2016
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. +91-94683 40497**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर,**
मो. 9466111730, 9466112730

भूमिका

मेरी प्रिय आत्माओ! प्रत्येक देश की कोई न कोई विशेषता होती है। वस्तुतः भारतवर्ष की यह विशेषता है जब-जब यहाँ पर विपत्तियों के बादल मंडराने लगते हैं और पाप, अत्याचार, पाखण्ड, अंधविश्वास अत्यधिक बढ़ जाते हैं तो इनको दूर करने के लिये और सज्जनों की रक्षा के लिए किसी न किसी महामानव का प्रादुर्भाव होता है। पौराणिक लोग उसे भगवान् का अवतार कहते हैं। वस्तुतः वह भगवान् का अवतार नहीं होता अपितु महापुरुष होता है। जैसे तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में कहा है –

जब जब होई धरम कै हानी।
बढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। –बालकाण्ड

संसार में जब धर्म की हानि होती है और राक्षस, नीच और अभिमानी व्यक्ति बढ़ जाते हैं। तब कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के दिव्य शरीर धारण कर सज्जनों के दुःख को दूर करते हैं।

इसी भाँति 19वीं शताब्दी में जब भारत में अत्याचारों और कुरीतियों का बोलबाला था। लोग वेद को भूल चुके थे तो उस समय इनको दूर करने के लिए महर्षि दयानंद जी का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने संसार को वेदों का सच्चा ज्ञान दिया था। इसलिए उन्होंने 10.4. 1875 ई० को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इसके पश्चात् भी आर्य समाज में महर्षि दयानंद जी के अनुगामी हुये। अनुगामी वह व्यक्ति होता है जो अपने जीवन को मर्यादाओं, सिद्धान्तों और नियम के अनुसार ढालता है जैसे महर्षि दयानंद के अनुगामी थे–स्वामी श्रद्धानंद, लेखराम, महात्मा हंसराज, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, लाला लाजपतराय, नारायण स्वामी आदि।

वस्तुतः आर्यसमाज में महर्षि दयानंद जी के अनेक अनुगामी व महामानव हुये हैं। परन्तु सबके जीवन चरित्रों पर प्रकाश डालना असंभव है। अतः मैंने मुख्य-मुख्य दस मानवों के जीवनचरित्रों पर ही संक्षिप्त प्रकाश डाला है जिन्हें महामानव की आदरणीय उपाधि से

विभूषित किया जा सकता है। हम देखते हैं कि आज चतुर्दिक भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता का बोलबाला है। अतः आज के परिपेक्ष्य में यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है ताकि व्यक्ति और विशेषतः बच्चे इसका अध्ययन करके अपने चरित्र का विकास कर सके और सारी मानवता का भला हो सके। वस्तुतः इसी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री नरेन्द्र आहूजा ''विवेक'' जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, जय किशन जी, नरेश बांसल जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। विशेषतः श्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी सकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता।

जिस अचिंत्यशक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी मैं कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। अल्पज्ञ एवं अपूर्ण होने के कारण फिर भी कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यन्त धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 12.8.2015

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

पुस्तक के विषय में

आर्य समाज के महामानव श्री धर्मपाल कपूर पंचकूला द्वारा रचित पुस्तक के विषय में अपने विचार देने का मेरा उद्देश्य इस पुस्तक को आद्योपांत पढ़ने के लिए सुधि पाठकों को प्रेरित करना भी है। वैसे तो आर्य समाज के महामानवों में शामिल जिन दैदीप्यमान रत्नों का चयन पुस्तक रचयिता श्री धर्मपाल कपूर ने किया है वह उसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। इन अनुकरणीय व्यक्तियों की संक्षिप्त जीवनी को सरल सरस ग्राह्य भावनात्मक शब्दों में देकर सीधे पाठकों के मन में उतार देने का एक सफल प्रयोग लेखक ने किया हैं वैसे तो पुस्तक की विषय सूची में शामिल आर्य समाज के तपोधन महामानवों के नाम ही पाठकों में चुम्बकीय आकर्षण उत्पन्न करने में सक्षम हैं। आर्य सिद्धान्तों, वैदिक विचारधारा से ओत-प्रोत, सत्य, त्याग, निष्ठा, परोपकार, दया, धैर्य संघर्ष जैसे सद्गुणों से सुसज्जित इन महामानवों के जीवन चरित्र किसी भी पाठक को प्रेरित कर आर्य बना लेने में सक्षम हैं।

जिस प्रकार मधुमक्खी वन उपवन में घूम-घूम कर फूलों से पराग चुनकर अमृत रूपी मधु का निर्माण केवल परोपकार की भावना से दूसरों के लिए करती है ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता श्री धर्मपाल कपूर भी अनथक, अनवरत स्वाध्याय करते हुए वैदिक आर्य सिद्धांतों के स्थापक, प्रचारक, प्रसारक महामानवों के तपोमय, संघर्षशील जीवन चरित्रों का मधु बनाकर इस पुस्तक रूप में बड़ी सहजता से पाठकों के लिए उपलब्ध करवाया हैं स्वाध्याय मनन और आत्मसात करने के उद्देश्य से बिना किसी मूल्य के केवल आर्य सिद्धांतों के प्रचार हेतु लिखी इस पुस्तक का पाठक भरपूर लाभ उठायेंगे और यह पुस्तक पाठकों को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनने के लिए प्रेरित करेगी।

अंत में लेखक श्री धर्मपाल कपूर के जीवन के लिए स्वास्थ्य, निरोगता की कामना, प्रार्थना और इसी प्रकार आर्ष साहित्य सृजन करते रहने की प्रेरणा सहित !

नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'
602 जी.एच. 53
सैक्टर 20, पंचकूला,
हरियाणा-134116
मो. 09467608686

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	स्वामी विरजानन्द	1
2.	महर्षि दयानन्द	9
3.	स्वामी श्रद्धानन्द	35
4.	पंडित लेखराम	61
5.	महात्मा हंसराज	71
6.	पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी	83
7.	लाला लाजपतराय	93
8.	महात्मा नारायण स्वामी	107
9.	स्वामी स्वतंत्रानंद	121
10.	पंडित रामचन्द्र देहलवी	129

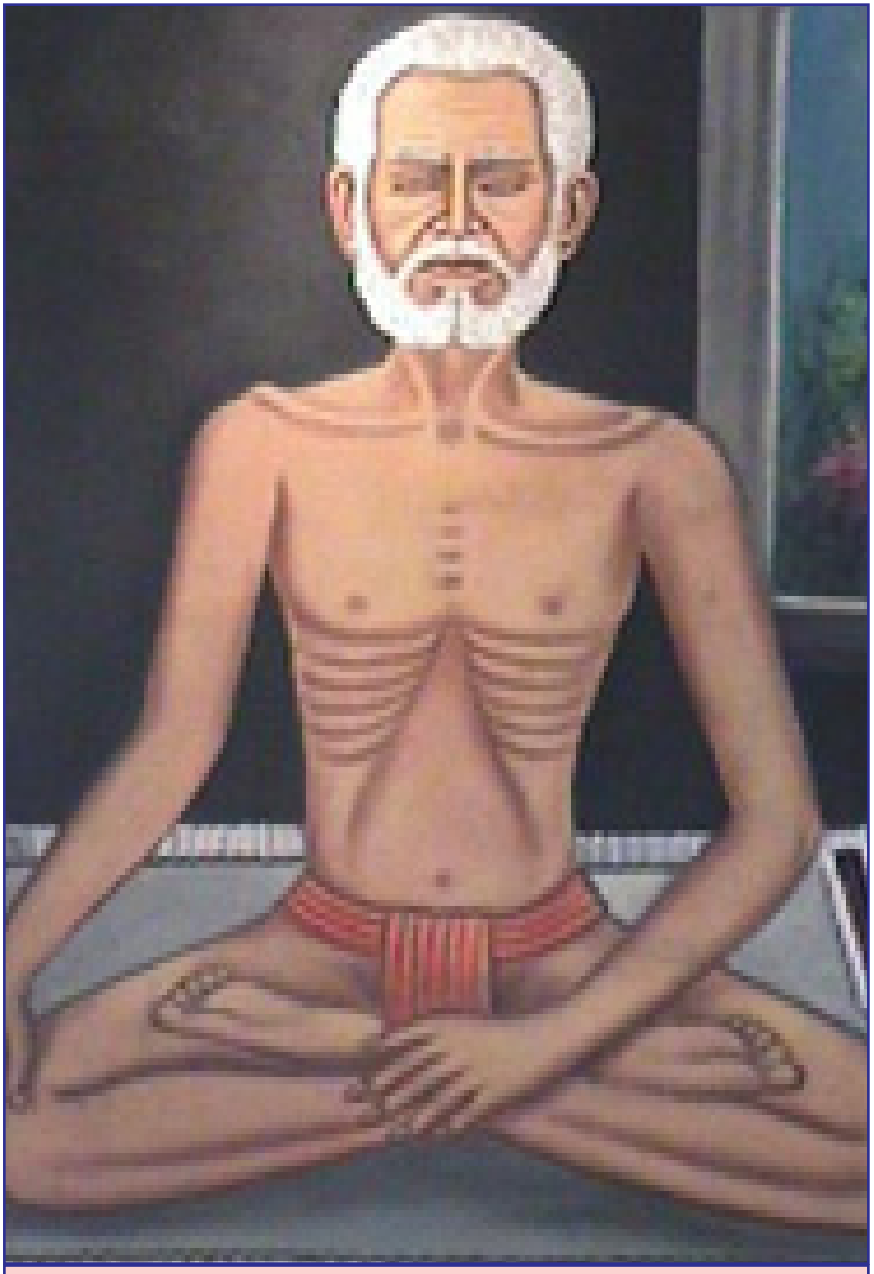

स्वामी विरजानन्द जी

1. स्वामी विरजानन्द

संसार में इतिहास की घटनायें रेल की पटरी की भाँति समानान्तर रेखा में नहीं चलती। यह ठीक है कि काल के साथ इतिहास भी सतत दौड़ रहा है परन्तु वह सरल और सीधी दिशा में गतिशील हो - ऐसी बात नहीं है। वृक्ष के लघु बीज के सदृश एक छोटी घटना भी कितने विशाल रूप में परिणित हो जायेगी और कैसे अकल्पनीय परिणामों का प्रसव करेगी - यह मानव के लिए सर्वथा अप्रत्याशित है।

1. जन्म तथा बाल्यकाल :–

पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत करतारपुर जिला जालन्धर के समीप गंगापुर गाँव में ब्राह्मण वंशीय पं० नारायण दत्त के घर 1778 ई० में एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम 'बृजलाल' रखा गया। 5 वर्ष की आयु में ही बालक पर शीतला रोग का प्रबल आक्रमण हुआ। जीवन तो बच गया परन्तु बालक सदा के लिये अंधा हो गया। परन्तु दुर्भाग्य ने अभी पीछा नहीं छोड़ा था। बालक अभी 11 वर्ष का ही था कि माता-पिता का देहान्त हो गया। छोटे अन्धे भाई को बड़ा भाई अपने लिए भार स्वरूप समझने लगा और उसे, किसी न किसी बहाने, सताने लगा। स्थिति जब असह्य हो गई, तब बालक बृजलाल घर छोड़ने के लिए विवश हो गया।

2. गृह त्याग :–

घर से भागने वाले बच्चे, बहुधा, आवारा और कुपथगामी होते देखे गये हैं। परन्तु जिस आत्मा के भीतर पूर्व जन्मों के सात्विक और दैवीय संस्कार हों, वह स्वतः सुपथगामी रहता है। करतारपुर से यह किशोर सीधा, ऋषिकेश पहुँचा। वहाँ एक वर्ष तक गंगा जल में बैठ गायत्री जाप करता रहा। एक दिन उसने यह प्रेरणा सुनी कि विरजानन्द, तुम्हारा काम अब यहाँ हो चुका है। तुम अब आगे की

यात्रा करो। तुम्हारा जो उद्देश्य था वह पूरा हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषिकेश आकर 'बृजलाल' ने अपना नाम विरजानन्द दंडी' रख लिया था। यहाँ से दंडी जी कनखल चले गये और पूर्णानन्द स्वामी से व्याकरण पढ़ते रहे।

3. स्वामी जी के मधुर विष्णु स्तोत्र से अलवर नरेश प्रभावित :–

कनखल में अपना अध्ययन समाप्त कर विरजानन्द तीर्थ यात्रा की भावना से प्रयाग आदि स्थानों की ओर चल पड़े। इसी प्रसंग में वे सोरों पहुँचे। गंगा स्नान कर दंडी जी विष्णु स्तोत्र का सस्वर पाठ करने लगे। भाग्य की बात, उसी समय वहाँ अलवर नरेश श्री विनयसिंह भी स्नान के लिए उपस्थित थे। स्वामी जी के मधुर स्वर और शुद्ध उच्चारण से विशेष प्रभावित हुए। वार्तालाप से युवा संन्यासी की अद्भुत प्रतिभा से चकित हो गये। उन्होंने तत्काल स्वामी जी से अपने साथ अलवर चलने का अनुरोध किया। राजा के अत्यन्त आग्रह को देख उन्होंने इस शर्त पर अलवर जाना स्वीकार किया कि वे उन से प्रतिदिन 3 घण्टा पढ़ा करेंगे, इसमें कभी व्यवधान नहीं होगा। राजा ने यह शर्त स्वीकार करली। स्वामी जी के भोजन आदि का सारा प्रबन्ध राज्य की ओर से था। इसके अतिरिक्त फुटकर व्यय के लिए 2 रुपये प्रतिदिन दिये जाते थे। राजा प्रतिदिन तीन घंटे स्वामी जी से पढ़ने लगे। यह पठन व्यवस्था राजमहल में थी। राजा के शिक्षक होने के नाते स्वामी विरजानंद जी एक साधारण कुटिया में रहते थे। यहीं रहकर उन्होंने संस्कृत व्याकरण पर ''शब्द बोध'' नामक पुस्तक की रचना की थी। एक दिन स्वामी जी तो राज प्रासाद में ठीक समय पर पढ़ाने के लिए पहुँच गये परन्तु राजा महोदय उपस्थित न हुये। स्वामी जी नियम भंग के प्रति तीक्ष्ण स्वभाव के थे। वे तत्काल अपने स्थान पर आकर और सब सामान वहीं छोड़ सोरों आ गये। कुछ मास भरतपुर राजा के आग्रह पर वहाँ व्यतीत कर फिर स्वामी जी मथुरा आ गये और वहीं स्थिर रूप से रहने लगे।

4. मथुरा में निःशुल्क संस्कृत व्याकरण अध्यापन :–

संस्कृत व्याकरण के श्रेष्ठ अध्यापक के रूप में दंडी जी का यश सौरभ चतुर्दिक फैल रहा था। अब वे मथुरा में मुख्य मार्ग पर एक छोटी अट्टालिका में निवास करते थे। पाठशाला का भी यही स्थान था, अलवर और जयपुर के महाराजा तथा अन्य धनी-मानी व्यक्ति भी उनकी सहायता करते रहते थे। स्वामी जी का जीवन अत्यन्त तपोमय था। स्वल्प आहार, प्रायः दुग्ध ही, और स्वल्प निद्रा के वे अभ्यस्त थे। उनके जीवन का मुख्योद्देश्य जहाँ एक ओर ब्रह्म-उपासना था, वहाँ दूसरी ओर शिष्यों को धर्म और व्याकरण की दृष्टि से योग्यतम बनाना था। विरजानन्द जी में कई अद्वितीय गुण थे। स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। एक बार जो सुन लेते, वह तत्काल स्मृतिपटल पर अंकित हो जाता। इसी का यह परिणाम था कि स्वामी जी को अनेक ग्रंथ कण्ठस्थ थे। स्मृति शक्ति के अतिरिक्त स्वामी जी की विचार और चिन्तन शक्ति व कठिन विषय को भी श्रोता व शिष्य को सरल पद्धति से हृदयंगम कराने की भी अद्‌भुत शक्ति थी। व्याकरण में स्वामी जी के पांडित्य की गहरी धाक काशी की पंडित मण्डली पर भी पड़ी हुई थी। स्वभाव से स्वामी जी स्पष्ट वक्ता, निष्कपट और सरल-वृत्ति के साधु थे।

स्वामी जी अपने शिष्यों को सिद्धान्त कौमुदी, मनोरमा, शेखर आदि से ही व्याकरण पढ़ाते थे। परन्तु एक घटना ने उनकी अध्यापन-पद्धति में क्राँति ला दी। उनके पड़ोस में एक दक्षिणी पंडित रहते थे जो प्रतिदिन पाणिनी-ऋषिकृत मूल अष्टाध्यायी का पाठ करते थे। इन सूत्रों को सुनते ही वह उन्हें स्मरण हो गये और व्याकरण की इस आर्य पद्धति में उनकी दृढ़ आस्था हो गई। उन्होंने अनुभव किया कि सिद्धान्त कौमुदी आदि अनार्य ग्रंथों की पद्धति अस्वाभाविक और छात्रों के मस्तिष्क में भ्रम पैदा करने वाली है।

5. आर्ष ग्रंथों के ही भक्त :–

इन अनार्ष ग्रंथों के प्रति अब स्वामी जी के हृदय में इतनी उग्र

प्रतिक्रिया हुई कि वे उनके कट्टर विरोधी हो गये। सिद्धान्त कौमुदी के रचयिता भट्टोजी दीक्षित के प्रति वे इतने क्रुद्ध हो गये कि अपने शिष्यों से उसके नाम पर जूते लगवाते थे। यहाँ तक विरजानन्द जी की आर्ष ग्रंथों पर अटूट आस्था थी। उन्हीं द्वारा रचित एक पद्य देखिए-

अष्टाध्यायी महाभाष्ये द्वे व्याकरण पुस्तके।

अतोऽन्यत्पुस्तकं यतु तत्सर्वं धूर्तचेष्टितम्।।

पाणिनी कृत अष्टाध्यायी एवं उस पर महर्षि पतंजलि कृत महाभाष्य ये दोनों ही व्याकरण के प्रामाणिक आर्ष ग्रंथ हैं। इन दो से अतिरिक्त जो कौमुदी आदि ग्रंथ है वे सब धूर्तों की रचना है।

जयपुर के राजा रामसिंह, जो स्वामी जी के अनन्य भक्त थे - से उन्होंने कहा था कि अपने दरबार में वे व्याकरण के अनार्ष ग्रंथों पंडितों से उनका शास्त्रार्थ कराएँ। वे आर्ष ग्रंथ अष्टाध्यायी की पद्धति की श्रेष्ठता सिद्ध करेंगे। मथुरा के अंग्रेज़ कलैक्टर श्री पोष्टली द्वारा स्वामी जी की प्रमुख इच्छा क्या है, यह पूछे जाने पर विरजानन्द जी ने कहा था–

आप शासक हैं। मेरी एकमात्र इच्छा यह है कि सिद्धान्त कौमुदी आदि अनार्ष व्याकरण ग्रंथों को अग्नि की भेंट करवा दें।

6. महर्षि दयानन्द : गुरु चरणों में :–

जिस समय ऋषि दयानन्द दंडी जी की सेवा में शिष्य रूप में पहुँचे, उस समय गुरुवर की आयु लगभग 86 वर्ष की और शिष्य पूर्ण यौवन-काल में लगभग 36 वर्ष का था। दोनों के बीच लगभग 50 वर्ष का अन्तर था। गुरु की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए तीन गुण आवश्यक हैं–जिज्ञासा, निष्ठा एवं सेवा। महर्षि दयानंदजी में ये तीनों गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे। जिज्ञासा-ज्ञान पिपासा के प्रति उनकी निष्ठा इस प्रकार विकसित थी। पहली भेंट में ही दंडी जी ने दयानन्द से पूछा–

कुछ व्याकरण पढ़े हो ?

दयानन्द ने उत्तर दिया–

महाराज ! सारस्वत आदि ग्रंथ पढ़ा हूँ ।

गुरु ने आदेश दिया–

इन अनार्ष ग्रंथों को भूल जाओ । अगर तुम्हारे पास है तो यमुना में बहा आओ । फिर तुम मुझ से आर्षग्रंथ पढ़ने के अधिकारी बन सकोगे ।

शिष्य ने नतमस्तक हो गुरुदेव के आदेश का पालन किया । दयानन्द के पास महाभाष्य नहीं था और न खरीदने के लिए राशि थी । दंडी जी की प्रेरणा से नगर में चन्दा करके महर्षि दयानन्द के लिये महाभाष्य की एक प्रति 31 रुपये में मंगवाई गई । स्वामी जी की कृपा से महर्षि दयानन्द के भोजन-छादन, निवास तथा अन्य आवश्यक, दूध, रात को पढ़ने के लिए तेल आदि वस्तुओं की भी व्यवस्था हो गई । दंडी जी ने पहले तो यह कहा–

हम संन्यासियों को नहीं पढ़ाते, क्योंकि इनके भोजन आदि की व्यवस्था हम नहीं कर सकते और बिना समुचित व्यवस्था के अध्ययन निश्चिन्तता से नहीं हो सकता ।

महर्षि दयानन्द ने निवेदन किया–

महाराज ! आप पढ़ाना आरम्भ कर दीजिए । भोजन के विषय में मैं शीघ्र ही निश्चिन्तता प्राप्त कर लूंगा ।

दण्डी स्वामी जी का शिष्य होने से दयानन्द, सचमुच इस संबंध में शीघ्र ही निश्चिन्त हो गये थे । वैसे, दयानन्द अपने तपस्वी गुरु की भाँति अत्यन्त तपस्वी शिष्य थे । उनकी आवश्यकताएँ बहुत न्यून थीं । इसलिए उन्हें निश्चिन्त होने में देर न लगी । मथुरा में दयानन्द के तपोमय और ब्रह्मचर्य के कारण उनके ओजस्वी जीवन का व्यापक प्रभाव था ।

7. आदर्श शिष्य द्वारा गुरु सेवा :–

गुरु-शिष्य सम्बन्ध का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है । दंडी ऋषि सुष्टु स्वभाव के होते हुए भी, वृद्धावस्था के हेतु कुछ तीक्ष्ण और क्रोधीवृत्ति के थे । इसके विपरीत, दयानन्द अत्यंत विनम्र, अध्ययन-शील, आज्ञाकारी और गुरुचरणों में अविचल श्रद्धा रखने वाले थे । दंडी जी शीघ्र ही यह भाँप गये थे कि दयानन्द उनके अन्य शिष्यों की तुलना में विशिष्ट और कुछ असाधारण गुणों का पुंज है । दंडी जी बारहों महीने यमुना नदी के मध्यवर्ती जलधारा से स्नानऔर उसी का पान करने के अभ्यासी थे । दंडी जी की सेवा का यह व्रत दयानन्द ने स्वयं ही अपनी इच्छा से सहर्ष स्वीकार किया । लगभग 3 वर्ष तक के अपने शिक्षा काल में दयानन्द प्रतिदिन भोर वेला में, बिना सर्दी-गर्मी, बरसात, आँधी की परवाह किए, यमुना जल के लगभग 15 घड़ों से गुरुजी को स्नान कराते और उनके लिए पेय जल लाते ।

8. गुरु जी का प्रकोप : शिष्य द्वारा सेवा पूर्ववत् :–

दंडी जी के निवास स्थान को दयानन्द प्रतिदिन झाड़ू देकर साफ करते थे । एक दिन कूड़ा उठाकर उन्होंने कमरे के एक कोने में रख दिया और उसे बाहर उठाकर ले जाने के लिए कुछ चीज खोजने लगे । इतने में गुरु जी टहलते हुए उधर आ निकले । उनका पाँव कूड़े पर पड़ गया । गुरु जी अत्यंत क्रोधावेश में आ गये और दयानन्द पर लाठी का प्रहार कर दिया और कठोर वचन भी कहे । स्वामी जी ने गुरु के इस दण्ड को सहर्ष अंगीकार किया, यद्यपि इस मामले में वे दोषी नहीं थे । जिस समय गुरु जी शांत हुए तो स्वामी दयानन्द ने उनके चरणों और शरीर को श्रद्धा से सहलाना आरम्भ कर दिया, यह कहते हुए–

गुरुवर ! मैं तो युवा हूँ पर आप वृद्ध हैं । आपका दंड तो मेरे लिए अमृतवत् है । मेरा शरीर कठोर है, पर आपके वृद्ध, जर्जरित अस्थिमात्र शरीर में पीड़ा हो गई होगी, इसलिए मैं मालिश से उसे दूर करता हूँ ।

गुरु अपने शिष्य की इस सेवा भावना से गद्‌गद्‌ हो गये । इसी का यह परिणाम था कि गुरु-शिष्य का कई घंटों तक प्रायः एकान्त में वार्तालाप होता था । निश्चय ही गुरु जी को यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि शिष्य दयानन्द सामान्य व्यक्ति नहीं है किन्तु भारत का एक अद्‌भुत रत्न है ।

9. गुरु से विदाई : गुरु दक्षिणा :–

लगभग 3 वर्ष तक दंडी जी के चरणों में अन्तःवासी के रूप में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्‌ अब शिष्य दयानन्द की विदाई का समय आ गया । स्वामी दयानन्द को प्रबल इच्छा थी कि गुरु श्री से प्राप्त शिक्षा को कार्यान्वित करने के लिये देशाटन करूँ । परन्तु खाली हाथ गुरुजी से विदा होना भारतीय परम्परा के विरुद्ध था । दयानन्द अत्यन्त विनम्रभाव से कुछ लौंग लेकर गुरुचरणों में उपस्थित हुए और बोले–

भगवन्‌ ! आपने विद्यादान कर मुझ पर जो उपकार किये हैं, उनसे मैं आजन्म उऋण नहीं हो सकता पर अपनी हार्दिक श्रद्धा के प्रतीक ये कुछ लौंग आपके श्रीचरणों में समर्पित हैं ।

दंडी जी ने स्मितहास्य के साथ कहा–

वत्स ! मैं पार्थिव वस्तु की यह दक्षिणा नहीं चाहता । मैं अन्य वस्तु तुम से माँगता हूँ और वह तुम्हारे ही पास है तुम्हें कहीं से लानी नहीं पड़ेगी ।

दयानन्द ने निवेदन किया, ''गुरुदेव ! मैं पूर्ण रूप से आपके चरणों में समर्पित हूँ । आप जो आदेश करेंगे, मैं उसे आजीवन निभाऊँगा ।'' गुरुवर ने कहा, मैं तुम से यही दक्षिणा मांगता हूँ कि तुम आजीवन आर्षग्रंथों का प्रचार और अनार्षग्रंथों का खण्डन करते हुए वैदिक धर्म की स्थापना हेतु अपना प्राण तक अगर न्योछावर करना पड़े तो तुम संकोच नहीं करोगे । ऋषि दयानन्द ने गुरुदेव के श्रीचरणों को स्पर्श करते हुए कहा, ''आपका शिष्य आपके इस

आदेश का प्राणपन से पालन करेगा ।'' गुरुदेव ने अपने स्नेहमय कर कमलों से दयानन्द के सिर पर हाथ फेरते हुए हार्दिक आशीर्वाद दिया । स्वामी विरजानंद जी ने अपने शिष्य को छाती से लगा लिया । इस अनूठे आत्मदान के साथ ही गुरु के अजस्र अनुदान भी प्रवाहित हो उठे और आत्मदान का संकल्प पूरा करने के लिये महर्षि दयानंद जी निकल पड़े । इस प्रकार गुरु-शिष्य का भौतिक सम्बन्ध तो समाप्त हुआ, परन्तु आत्मिक सम्बन्ध आजीवन अटूट रहा । ऋषि दयानन्द ने अपने समस्त ग्रंथों में अपने आपको ''विरजानंद दंडी शिष्य''इन शब्दों से गौरवान्वित करते हुए अपने आचार्य वर की पुण्य-स्मृति को देदीप्यमान रखा ।

10. महाप्राण :–

दंडी विरजानंद का निधन 90 वर्ष की आयु में सोमवार को 14.9.1868 ई० को हुआ । ऋषि दयानंद ने इस दुःखद समाचार को सुन कर कहा–

आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया ।

इस वीतराग संन्यासी की पुण्य स्मृति में आर्य समाज की ओर से करतारपुर में ''श्री विरजानंद स्मारक भवन'' स्थापित किया गया है । 1970 ई० को केन्द्रीय सरकार द्वारा दंडी जी की पुण्य स्मृति में डाक-टिकट जारी किया गया । जब देश में विरजानन्द जी जैसे गुरु और महर्षि दयानन्द जैसे शिष्य होंगे तभी देश का कल्याण होगा ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी

2. महर्षि दयानन्द

मरनेवाले इस तरह मर जीनेवाले ऐसे जी ।
कुछ सबक़ दे जाय तेरी ज़िन्दगी भी मौत भी ।।
ज़िन्दगी जिन्दा दिलों में फूक दे रूहे-हयात ।
मौत ऐसे हो कहे तेरी मौत में हो ज़िन्दगी ।।

ऐसे घोरत्तम निराशा भरे अंधकार में संसार को ऐसे महामानव की आवश्यकता थी जिसमें कपिल, कणाद जैसा पाण्डित्य, हनुमान एवं भीष्मपितामह का ब्रह्मचर्य, महात्मा बुद्ध जैसा त्याग और वैराग्य, श्रीराम जैसी मर्यादा, श्रीकृष्ण जैसी नीतिमत्ता, पतंजलि एवं व्यास जैसी तपस्या एवं आध्यात्मिकता हो । यह केवल भारत भूमि का ही नहीं, अपितु समूची मानवता का सौभाग्य ही कहा जायेगा कि इन गुणों से विभूषित एवं अलंकृत महर्षि दयानन्द का प्राणिमात्र के कल्याण, उत्थान एवं निर्माण का अमर संदेश सुनाने के लिये भारत भूमि पर आगमन हुआ । अतः एक विद्वान् ने महर्षि दयानंद के विषय में लिखा है :–

जैसे चमकने वालों में सूर्य, हाथियों में ऐरावत, भौतिक पदार्थों में रत्न, तीर्थों में जमदाग्न्य, आदर्श पुरुषों में राम, नीतियों में चाणक्य, योगेश्वरों में कृष्ण तथा शीतल तत्वों में चन्द्रमा को निराला माना जाता है इसी प्रकार यह महापुरुष भी निराला था ।

इसीलिए एक कवि ने सत्य कहा है :–

धन्य है तुमको ऐ ऋषि, तूने हमें जगा दिया ।
सो-सो के लुट रहे थे हम तूने हमें बचा दिया ।।

1. वंशवृक्ष एवं जन्म :–

महर्षि दयानंद की बहन प्रेमबाई के वंशज पोपट रावल के गृह से प्राप्त दानपात्रों से विदित होता है, कि हरिभाई त्रिवेदी 17वीं शताब्दी के अंत तक 18वीं शताब्दी के पूर्वभाग में विद्यमान थे । इन्हीं

के वंश में एक मेघजी त्रिवेदी हुए। उनके दो पुत्र थे। विश्रामजी और डोसाजी। विश्रामजी जीवापुर ग्राम में जाकर बस गये और उनके भाई डोसाजी टंकारा में ही रहे। डोसा जी संस्कृतज्ञ एवं विद्वान् थे। उनके दो पुत्र हुए कुंवर जी और लाल जी। कुंवरजी के केवल वेल जी नामक एक ही पुत्र हुआ।

लालजी महर्षि दयानंद के दादा थे और उनके दो पुत्र हुए। एक मावजी और दूसरा करसनजी। ये करसनजी दयानंदजी के पिता थे और उनकी माता का नाम अमूबा या अमृतबेन था जोकि भुज के एक पुजारी भीमजी की पुत्री थी। इसी प्रकार करसनजी के पांच संतानें उत्पन्न हुई जिनके नाम निम्नलिखित हैं :–

1. मूलशंकर : (दयालजी, दयाराम) यह मूलशंकर ही बाद में जाकर महर्षि दयानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

2. रत्ना बा : यह दयानंद की छोटी बहन थी। इसकी केवल 15 वर्ष की आयु में हैज़े के कारण मुत्यु हो गई जोकि दयानंद के जीवन में वैराग्य के आविर्भाव का एक मुख्य कारण बनी।

3. बल्लभजी : यह दयानंद के छोटे भाई थे। जब दयानंद की छोटी बहन रत्न बा का अचानक निधन हो गया और दयानंद ने गृहत्याग कर दिया। इससे दयानंदजी के पिता श्री करसनजी को अत्यंत दुःख हुआ। अब पिता ने अपने छोटे पुत्र बल्लभ जी का विवाह कच्छ के मूल निवासी एक पुजारी ब्राह्मण की कन्या मोंथीबाई से कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश विवाह के 6 महीने बाद बल्लभजी की मृत्यु हो गई। घर में रोती कलपती युवा पुत्रवधु को देखकर करसनजी का हृदय विदीर्ण हो गया।

4. नवलशंकर : यह करसनजी का सबसे छोटा पुत्र था और इसके बाद इसकी भी मृत्यु हो गई।

5. प्रेम बा : यह करसनजी की छोटी पुत्री थी जोकि परिवार में रह गई थी। इसलिये करसनजी ने उसका विवाह गोंडल के समीपवर्ती ग्राम के निवासी मंगलजी लीलाधर रावल के साथ कर

दिया । प्रेम बा के पुत्र का नाम बोघल रावल था । बोघल रावल के पुत्र कल्याण रावल हुये जिनके दो पुत्र पोपट लाल एवं प्रभाशंकर थे । इसी कारण जब 1926 ई. में टंकारा ग्राम में दयानंदजी की जन्म शताब्दी का उत्सव मनाया गया था तो प्रेम बा के प्रपौत्र पोपट रावल स्वयं समारोह में उपस्थित हुए थे और उन्होंने अपनी प्रपितामही प्रेम बा और पितृपक्ष के लोगों का विस्तारपूर्वक परिचय प्रस्तुत किया था ।

2. गृहत्याग :–

जब मूलशंकर 14 वर्ष के हुए तो उस समय उनके पिताजी ने उसे शिवरात्रि का व्रत रखने की आज्ञा दी । परन्तु उनकी माताजी नहीं चाहती थी कि उसका पुत्र शिवरात्रि का व्रत रखे । परन्तु पिताजी ने एक न सुनी । पिताजी मूलशंकर को व्रत रखने के लिए अपने साथ शिवमंदिर ले गये । शिवमंदिर में अनेक शिवभक्त तथा पुजारी भी थे । दीपों से सारा वातावरण प्रकाशित हो रहा था और धूप की सुगंध समूचे वायुमण्डल को सुगंधित कर रही थी । शिवपूजा होने के कुछ समय पश्चात् ही सारे भक्त एवं पुजारी निद्रा की गोद में समा गये केवल मूलशंकर ही जागते रहे । चारों ओर गम्भीर निस्तब्धता एवं नीरवता का साम्राज्य छा गया था । इतने में शिवपण्डी पर कुछ चूहे आकर नैवेद्य खाने व मल-मूत्र करने लगे । यह सारा दृश्य मूल शंकर देख रहे थे । मूलशंकर के हृदय में घर की परम्परा के अनुसार शिव के प्रति आस्था एवं भक्ति थी । वे शिवपण्डी को ही सच्चा शिव मानते थे । परन्तु अब उन्हें यह ज्ञान हो गया था कि यह सच्चा शिव नहीं है । जब यह मूर्ति चूहों से अपनी रक्षा नहीं कर सकती तो संसार की रक्षा क्या करेगी । यह शिवपण्डी परमेश्वर कभी नहीं हो सकती क्योंकि प्रभु तो सारे संसार के रचयिता, पालक और विनाशक हैं । इस घटना ने मूलशंकर को इतना परेशान किया कि उन्हें अपने पिता को जगाना पड़ा और पिता जी से पूछा–

पिता जी ! जिस महादेव की कथा मुझे सुनाई गई है वह तो गुणों से चेतन प्रतीत होता है । यदि यह मूर्ति उसी महादेव की होती तो भला

इन भ्रष्ट महामलिन मूषकों को अपने ऊपर क्यों चढ़ने देता? चूहे उसके शरीर पर सपाटे से दौड़े फिरते हैं और यह शिर तक नहीं हिलाता और न इन घृणित जन्तुओं के स्पर्श से ही अपने को बचाता है। इस अचेतन महादेव से उस सर्वशक्तिसम्पन्न चेतन परमेश्वर को समझना असम्भव समझता हूँ। यही भेद जानने के लिए आपको जगाकर प्रश्न पूछा है।

पिता ने पुत्र के इस प्रश्न को गम्भीरता से लिया और इसका उत्तर इस प्रकार से दिया –

पुत्र! इस कलिकाल में महादेव के साक्षात् दर्शन नहीं होते। इसलिए उसी कैलाशवासी शिव की मूर्ति बना कर प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है। इन पाषाण आदि की मूर्तियों को यदि कोई महादेव की भावना से पूजे तो इससे महादेव अपनी पूजा के समान प्रसन्न हो जाता है। बेटा! तेरी तर्क बुद्धि बहुत बड़ी है यह सत्य है कि यह तो केवल देवता की मूर्ति है, साक्षात् देवता नहीं।

पिता के इस उपदेश से दयानंद की सन्तुष्टि नहीं हुई और उसकी आस्था मूर्ति पूजन से हट गई। उसकी लगन सच्चे शिव की खोज करने में लग गई। इसप्रकार मूलशंकर ने अपने घर आकर अपना व्रत तोड़ दिया और अपनी माता से लेकर खाना भी खा लिया। इसी दिन मूलशंकर को अद्‌भुत बोध हुआ जिसको ''ऋषिबोध उत्सव'' के रूप में हर वर्ष विभिन्न आर्य समाजों में मनाया जाता है।

इसके पश्चात् मूलशंकर ने 14 वर्ष की आयु में यजुर्वेद और अन्य वेदों के कुछ अंश कण्ठस्थ कर लिये और इसके अतिरिक्त निरुक्त, निघण्टु आदि ग्रंथों का भी अध्ययन कर लिया। मूलशंकर जब 16 वर्ष के थे उस समय एक रात उन्हें अपने प्रियजनों के साथ नाच में जाना पड़ा। नाच आरंभ होने से पूर्व ही मूलशंकर के घर से एक नौकर ने वहाँ पहुँच कर सूचना दी कि उनकी छोटी बहन रत्न बा

हैज़े की शिकार हो गई है। यह समाचार सुनकर शीघ्र ही मूलशंकर अपने प्रियजनों के साथ घर पहुँचे। छोटी बहिन का बहुत उपचार किया परन्तु सब व्यर्थ। चार घंटे के भीतर ही उनकी बहिन प्रभु को प्यारी हो गई। सारा परिवार रोने लगा परन्तु मूलशंकर नहीं रोये। बहिन की मृत्यु देखकर मूलशंकर के हृदय में वैराग्य का प्रादुर्भाव हुआ और उसने मृत्युन्जय बनने का संकल्प लिया।

जब मूलशंकर 19 वर्ष के थे तो उस समय उनके चाचा की हैज़े के कारण मौत हो गई। चाचा की मृत्यु पर मूलशंकर फूट-फूट कर रोने लगे। मानो उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई हो। इस घटना ने उनके हृदय में और भी वैराग्य को बढ़ा दिया। जब मूलशंकर 20 वर्ष के हो गये थे। उन्होंने अपने पिता जी से प्रार्थना की कि मुझे व्याकरण, ज्योतिष आदि के अध्ययन के लिए काशी भेज दीजिए। पिताजी तो उसके इस प्रस्ताव के लिये सहमत थे परन्तु माताजी ने काशी जाने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। मूलशंकर ने पंडितजी को बताया –

मुझको विवाह से ऐसी घृणा है कि जो किसी प्रकार मेरे मन से दूर नहीं हो सकती।

विवाह की बात किसी प्रकार पंडितजी तक न रहकर उसके पिताजी तक पहुँच गई। इसके बाद घर में मूलशंकर के विवाह की तैयारियाँ जोर-शोर से होने लगी और इसलिये उनका मन चंचल हो उठा। मूलशंकर ने गृहत्याग की प्रथम रात्रि अपने नगर से 6 कोस दूर व्यतीत की। फिर सायंकाल से पूर्व 20 कोस दूर जाकर विश्राम किया। यहाँ उन्होंने हनुमान मंदिर में रात व्यतीत की थी। अपनी यात्रा में उन्होंने बड़े चातुर्य से काम लिया। वे प्रसिद्ध मार्ग पर न चलकर ऊँचे नीचे विषम पथ से जाते थे ताकि उन्हें कोई पहचान न सके। परन्तु जब माता-पिता को पता चला कि मूलशंकर घर से भाग गया तो उनको बड़ा दुःख हुआ। चारों ओर घुड़सवार एवं सिपाही

दौड़ाये। जहाँ-जहाँ पर उसके जाने की संभावना थी, वहाँ-वहाँ पर उसे खोजा गया परन्तु मूलशंकर का कुछ पता न चला।

3. सत्य की खोज :

महर्षि दयानंद ने सत्य की खोज और शिव दर्शन के लिये गृहत्याग कर दिया। जब वे योगियों की खोज में जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें साधु वेश में कुछ ठग मिल गये। उनकी अंगुलियों में सोने की अंगूठियाँ एवं शरीर पर रेशमी वस्त्र थे। इस पर उन्होंने अंगूठियाँ उतार कर उन पाखण्डी साधुओं को सौंप दी। इस प्रकार लाल भक्त योगी के पास पहुँच कर वे योग सीखने लगे। उन्होंने मूलशंकर को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा दे डाली और उनका नाम शुद्ध चैतन्य रख दिया। कोट काँगड़ा में उन्होंने तीन मास काटे परन्तु उनकी मनोरथ-मुक्ता उन्हें वहाँ न मिल सकी। शुद्ध चैतन्य कोट काँगड़ा से थोड़ी ही दूर गये थे उनकी भेंट एक परिचित व्यक्ति से हो गई। उन्होंने उसे कह दिया कि वह सिद्धपुर जा रहा है और वहाँ पहुँच वे नीलकण्ठ महादेव के मंदिर में ठहरे। कुछ समय पश्चात् परिचित व्यक्ति ने सारी रामकहानी पत्र द्वारा लिख कर महर्षि दयानंद के पिता जी को भेज दी और सूचित कर दिया कि आप का पुत्र सिद्ध मेले में गया है। पुत्र का समाचार मिलते ही उसके पिता जी पुत्र की खोज में सिद्धपुर पहुँचे और खोजते-खोजते उस मंदिर में पहुँच गये जहाँ उनका पुत्र ठहरा हुआ था। पिताजी अपने पुत्र को गेरुवे वेश में देखकर क्रोध से बोले–

तूने सदैव के लिए हमारे वंश को दूषित कर दिया है। तू हमारे को कलंक लगाने वाला जन्मा है।

इस प्रकार पिताजी को क्रोधित देखकर शुद्ध चैतन्य ने अपने पिता जी के दोनों पांव पकड़ लिये। परन्तु मूलशंकर की इन बातों पर पिताजी को विश्वास नहीं हुआ और क्रोध में आकर उन्होंने उसके गेरुवे वस्त्र फाड़ डाले और तूंबे को तोड़ डाला। मूलशंकर के पिताजी

ने कहा–

तेरी माता तेरे वियोग में रो-रोकर मर रही है और तू ऐसा कठोर हृदय है कि मातृ-हत्या करना चाहता है ।

इस पर पुत्र ने पिताजी को उत्तर दिया कि आप निश्चित् हो जाइए । मैं आपके साथ घर जाकर माताजी के दर्शन करूँगा । परन्तु पुत्र की बातों पर पिता को विश्वास नहीं हुआ । इसलिए पिताजी ने पुत्र की निगरानी के लिये सिपाहियों का कड़ा पहरा लगा दिया और आज्ञा दी कि वे रात-दिन जागते रहें कहीं मेरा पुत्र फिर से भाग न जाए ।

परन्तु मूलशंकर पिताजी से पीछा छुड़ाकर भागना चाहते थे । इसलिये उन्हें रात को भी नींद नहीं आई । जब तीसरी रात का तीसरा पहर आरंभ हुआ और पहरेदार सो गये । तो उस समय अवसर का लाभ उठाकर हाथ में एक जलपात्र लेकर लघुशंका के बहाने वहाँ से उठकर भाग गये । भागकर वे सिद्धपुर से आधा कोस दूर एक बाग़ में चले गये । वहाँ पर एक पुराना मंदिर था । अब वे वटवृक्ष की शाखाओं को पकड़कर मंदिर के शिखर पर छिप कर बैठ गये ताकि कोई उन्हें देख न ले । जब पिताजी और पहरेदारों को यह समाचार मिला तो पिता ने उन्हें चतुर्दिक दौड़ाया परन्तु सब व्यर्थ । मूलशंकर वहीं मंदिर की चोटी पर छिपकर बैठे रहे और उन्हें किसी ने नहीं देखा और रात के चार बजे घोर अंधकार में वे मंदिर की चोटी से नीचे उतरे और उस ग्राम के दो कोस दूर जाकर ठहरे । इसके बाद वे अहमदाबाद होकर बड़ौदा के चैतन्यमठ में ठहरे । बड़ौदा से नर्मदा के तट पर भी गये । वहाँ वे सच्चिदानंद परमहंस से मिले और ज्ञानचर्चा भी हुई । वे चाणोदकर्नाली भी गये और वहाँ उन्होंने परमानंद परमहंसजी के साथ अध्ययन करना आरंभ कर दिया ।

शुद्ध चैतन्य को अब स्वयं भोजन बनाना पड़ता था जिससे विद्याध्ययन में बाधा पड़ती थी । अतः उन्होंने संन्यास लेने का निर्णय

कर लिया। अतः वे महाराष्ट्र के दण्डीस्वामी पूर्णानंद सरस्वतीजी से मिले। शुद्ध चैतन्य के अपने मित्र दक्षिणी पंडित से कहा कि वे दण्डीस्वामी जी से संन्यास लेना चाहते हैं। पहले तो दण्डी जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। परन्तु बाद में दक्षिणी पंडित के मजबूर करने पर मान गये। इस प्रकार दण्डी स्वामी पूर्णानंद सरस्वतीजी जोकि महाराष्ट्र के रहने वाले थे। शुद्ध चैतन्य को संन्यास की दीक्षा दी और उसका नाम दयानंद सरस्वती रखा।

इस प्रकार संन्यासी बनने के बाद लगभग 3 वर्षों तक स्वामी दयानंद योगियों एवं संत महात्माओं के साथ सत्संग करते हुए अपनी आत्मिक उन्नति करते रहे। संवत् 1912 में प्रथम बार हरिद्वार पधारे और योगियों से ज्ञान चर्चा की।

इसके पश्चात् स्वामी दयानंद जी ने एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं के साथ उत्तराखंड की यात्रा आरम्भ की। वे केदारघाट से चल रुद्रप्रयाग आदि स्थानों पर होते हुए शिवपुरी पहुँचे। वहाँ से चलकर कुछ समय तक गुप्तकाशी में रहे। इस प्रकार कई स्थानों पर घूम-घूम कर ओखीमठ पहुँच गये। वहाँ पर एक विशाल मठ था। वहाँ के साधुओं का जीवन ठाट-बाट एवं पाखण्ड से व्यतीत हो रहा था। ओखीमठ का मुख्य महन्त स्वामी दयानंद के ब्रह्मचर्य, ज्ञान, गुणों एवं आकर्षक व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित हुआ। एक दिन स्वामी दयानंद को प्रलोभन देते हुए बोला –

दयानंद! घुमक्कड़ों की भाँति घूमने से क्या मिलेगा? हमारे शिष्य बनकर गद्दी के स्वामी और लाखों रुपयों की सम्पत्ति के अधिकारी बनो।

स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया –

महन्त जी! जिस वैभव पर आपको अभिमान है। मेरे पिता जी की सम्पत्ति आपकी पूजापाठ के पाखण्ड से एकत्र की गई सम्पत्ति से कई गुणा अधिक है। जब मैं वह त्याग आया तब आपके धन-धान्य की ओर कब ध्यान कर सकता हूँ।

महन्त स्वामी दयानंद के त्याग, तप और उद्देश्य से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें कुछ देर मठ में ठहरने का अनुरोध किया। परन्तु स्वामी दयानंद अगले दिन जोशीमठ की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने कई विद्वानों से सत्संग भी किया। इसके बाद वे बद्रीनारायण जा पहुँचे। उस समय रावल जी वहाँ के मुख्य महन्त थे। एक दिन प्रातः काल ही स्वामी दयानंद जी अलखनंदा नदी के तट पर पहुँचे। नदी को पार करते समय स्वामी दयानंद जी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा यहाँ तक कि वे अचेत भी हो गये थे। फिर रात को 8 बजे बद्रीनारायण पधारे।

द्रोणसागर से स्वामी दयानंदजी मुरादाबाद आये। वहाँ से सम्वल गढमुक्तेश्वर होते हुए गंगा तट पर पहुँचे। उस समय उनके पास ''हठप्रदीपिका'', ''योगबीज'' और ''शिवसंध्या'' नामक पुस्तकें थी। इन पुस्तकों में नाड़ी चक्र का बड़ा विस्तृत वर्णन था। उन्होंने गंगा नदी में बहते हुए शव की चीर-फाड़ की थी। इस प्रकार ग्रंथ वर्णन में असत्य पाकर सारी पुस्तकों को फाड़ कर शव के साथ ही उन्हें गंगा में बहा दिया। फिर स्वामी दयानंद फर्रुखाबाद पहुँचे। वहाँ कुछ समय ठहरकर कानपुर चले गये। कानपुर और प्रयाग के मध्यवर्ती स्थानों में विचरते रहे। फिर काशी और काशी से चण्डाल गढ़ चले गये। वहाँ दुर्गाकुण्ड मंदिर में 10 दिन तक रहे। स्वामी दयांनद ने नर्मदा नदी के स्रोत देखने की अपनी यात्रा आरंभ की।

4. मथुरा पाठशाला :–

स्वामी दयानंद हिमालय पर गये थे। वहाँ पर जाकर वे आदिशंकराचार्य द्वारा संस्थापित ज्योतिर्मठ भी गये थे। इस मठ के महन्त स्वामी पूर्णानन्द के शिष्य थे। इसी महन्त ने उन्हें स्वामी पूर्णानन्द से पढ़ने की प्रेरणा दी थी और स्वामी पूर्णानन्द के नाम स्वामी दयानंद को एक पत्र भी दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमालय की यात्रा पूरी करके स्वामी दयानंद स्वामी पूर्णानंद के पास पहुँचे और उन्हें पढ़ाने के लिए निवेदन किया। उन दिनों उन्होंने

मौनव्रत रखा हुआ था। इस पर स्वामी पूर्णानन्द ने उत्तर दिया –

मैं 110 वर्ष का हो गया हूँ। वृद्धावस्था के कारण पढ़ाने का काम नहीं कर सकता। अतः तुम मथुरा में मेरे शिष्य विरजानंद के पास जाओ।

14-11-1860 ई० से 9-4-1863 ई० तक स्वामी विरजानंद के श्रीचरणों में विद्याध्ययन करते रहे। उस समय उनकी आयु 36 वर्ष की थी। सात फुट से ऊँचा तप्त स्वर्ण-सा गौर शरीर जिस पर ब्रह्मचर्य का ओज एवं तेज टपक रहा था, जो योग साधना एवं विविध प्रकार के तप व व्रतों से कान्तिमय हो रहा था, व्यायाम से सुगठित एवं संतुलित था, बरबस लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। उनके शरीर पर काषाय वस्त्र, एक हाथ में मोटा सोटा, गले में रुद्राक्ष की माला, भाल पर भभूत रम रही थी। बगल में एक वस्त्र में कुछ पुस्तकें थी। यह संन्यासी मथुरा में आकर रगेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे और कुछ दिन उपरांत स्वामी विरजानंद जी की कुटिया में पहुँचे।

जब स्वामी दयानंद विरजानंद की कुटिया पर पहुँचे तो उस समय कुटिया का द्वार बंद था। जब उन्होंने द्वार खटखटाया तो अंदर से आवाज़ आई –

कौन है?

स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया –

मैं कौन हूँ? यही जानने के लिए आपकी शरण में आया हूँ।

अब भी द्वार बंद रहा। अन्दर से फिर आवाज़ आई :--

क्या कुछ पढ़े हो?

इस पर स्वामी दयानंद ने जो भी पढ़ा था सब कह दिया। फिर अन्दर से आदेश हुआ –

अब तक जो तुमने पढ़ा है वह मनुष्यकृत अनार्ष ग्रंथसमूह है। जब तक अनार्ष ग्रंथों के संस्कार तुम्हारे मन पर अंकित रहेंगे तब तक

आर्ष ज्ञान, आर्ष प्रज्ञा और आर्ष विवेक का जागृत होना असम्भव है। अतः अनार्ष ग्रंथों को यमुना में प्रवाहित कर दो, उनमें प्रतिपादित मिथ्या बातों को विस्मृत कर दो। पुनः अपने अंतस्तल को विशुद्ध और निर्मल बना कर आओ। तभी आर्ष ग्रंथों का रहस्य तुम्हारी समझ में आ सकेगा।

स्वामी दयानंद ने गुरु की आज्ञा का पालन किया और अपनी पुस्तकें यमुना में फैंक कर गुरु जी के पास आकर बोले –

महाराज! पुस्तकें यमुना में फेंक आया हूँ और साथ ही पुराने पढ़े को विस्मृत कर हृदयपटल को स्वच्छ कर लिया है।

स्वामी विरजानंद जी की कुटिया में प्रवेश की आज्ञा स्वामी दयानंद को मिल गई। परन्तु अभी एक परीक्षा और थी। स्वामी विरजानंद जी ने स्वामी दयानंद जी को कहा–

दयानंद! तुम संन्यासी हो। संन्यासी के भोजन और निवास का कोई ठौर ठिकाना नहीं होता। अतः तुम्हारा हमारे अध्ययन करने का कोई स्थिर ढंग नहीं दीखता।

इस प्रकार स्वामी दयानंद ने स्वामी विरजानंद से निवेदन किया –

महाराज! आप इसकी चिन्ता न कीजिए। मैं इसका प्रबन्ध कर लूँगा।

इस प्रकार स्वामी विरजानंद ने स्वामी दयानंद को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। स्वामी विरजानंद जी की प्रेरणा से सारे नगर से चंदा एकत्रित करके स्वामी दयानंद के लिये ''महाभाष्य'' की एक प्रति 31 रुपये की मंगवाई गई थी। स्वामी दयानंद के भोजन का प्रबन्ध कुछ समय तक दुर्गाप्रसाद क्षत्रिय ने किया। फिर अमर लाल स्वामी दयानंद के परिचित हो गये। महाराजा सिंधिया उनके ज्योतिष से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अमर लाल को कुछ एक ग्राम दान में दे दिया था और साथ ही ''ज्योतिषबाबा'' की उपाधि से भी विभूषित

किया था। उनके घर पर 100 व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते थे। स्वामी दयानंद जी की अद्‌भुत प्रतिभा, विलक्षण बुद्धि, दिव्य देह एवं ब्रह्मचर्य दीप्ति से चमकते हुए मुख मण्डल को देखकर वह उनकी ओर आकर्षित हो गये। उन्होंने स्वामी दयानंद जी से सविनय निवेदन किया कि आप प्रतिदिन हमारे यहाँ ही भोजन ग्रहण करें। यहाँ तक कि वह पहले स्वामी को भोजन खिलाकर फिर स्वयं खाते थे।

स्वामी दयानंद जी को विश्रामघाट पर लक्ष्मी नारायण के मंदिर के नीचे की मंजिल में एक कोठरी रहने के लिए मिल गई। स्वामी दयानंद के लिए चार आने मासिक गोवर्धन सर्राफ दिया करते थे। दूध के लिए दो रुपये मासिक हरदेव पत्थर वाले दिया करते थे। अतः आर्यसमाज इन दोनों व्यक्तियों का स्वामी दयांनदजी की सहायता के लिए ऋणी रहेगा।

स्वामी विरजानंद की यह सुदृढ़ धारणा थी कि आर्ष ग्रंथों के बिना यथार्थ ज्ञान असम्भव है। अतः वे पाणिनी कृत अष्टाध्यायी एवं पतंजलि कृत महाभाष्य के अध्ययन पर जोर दिया करते थे। अतः स्वामी दयानंद भी इन दोनों ग्रंथों का अध्ययन करने लगे। स्वामी दयानंद स्वामी विरजानंद के शिष्यों में प्रकाण्ड पंडित एवं असाधारण प्रतिभा के विद्यार्थी थे।

स्वामी दयानंद गुरु विरजानंदजी की कुटिया में स्वयं झाड़ू लगाया करते थे और उनके स्नान के लिये यमुना से जल भी लाते थे। उन्होंने गुरु जी को सेवा द्वारा अपनी मुट्‌ठी में कर लिया था। एक दिन कुटिया साफ करते समय कुछ कूड़ा-कर्कट रह गया और कहीं उस पर गुरु जी का पाँव पड़ गया। इस पर गुरुजी ने दयानंद को लाठी से बहुत पीटा और उनकी भुजा पर गहरी चोट आ गई। परन्तु शिष्य ने अपनी पीड़ा की ओर कोई ध्यान न देकर गुरु जी से प्रार्थना की :–

महाराज ! आप मुझे न मारा करें, मेरा शरीर तो वज्र के समान है, उस पर प्रहार करने से आपके कोमल हाथों को ही पीड़ा होगी ।

स्वामी दयानंद आर्ष ग्रंथों का अध्ययन कर कृतार्थ हो गये । सोना दिव्य कुन्दन बन गया । उनकी विदाई का समय आ गया । गुरु जी लौंग के बहुत शौक़ीन थे । उन्होंने गुरुजी के चरण स्पर्श करके कहा –

महाराज ! आपने असीम कृपा कर मुझे विद्यादान दी है । उसके लिये मेरा रोम रोम आपका धन्यवाद करता है । प्रभो ! अब आप का शिष्य आप से देशाटन की आज्ञा ग्रहण करना चाहता है ।

अपने प्रिय शिष्य से गुरुजी ने पूछा –

दयानंद क्या लाये हो ?

शिष्य ने गुरुजी को उत्तर दिया –

थोड़े से लौंग लाया हूँ ।

गुरुजी ने शिष्य को उत्तर दिया –

क्या हमारे घोर परिश्रम का यही पारिश्रमिक है ?

गुरुजी से शिष्य ने निवेदन किया –

मैं अकिंचन संन्यासी हूँ । ये लौंग भिक्षा करके लाया हूँ । गुरुजी विश्वास कीजिए । मेरे पास है ही क्या जो आपको भेंट करूं ?

गुरुजी के ज्योतिहीन नेत्रों ने चाहे इन दृश्य को न देखा हो, परन्तु वे शिष्य के हार्दिक भाव को तो समझ ही गये । उन्होंने उत्तर दिया वत्स ! क्या इन तुच्छ लौंगों को देकर ही गुरुजी के ऋण से उऋण होना चाहते हो ?मैं तो इससे कहीं अधिक मूल्य की दक्षिणा चाहता हूँ । गुरुजी ने अपने प्रिय शिष्य को कहा –

सौम्य ! मैं तुमसे किसी प्रकार के धन की दक्षिणा नहीं चाहता हूँ । मैं तुमसे तुम्हारे जीवन की दक्षिणा चाहता हूँ । तुम प्रतिज्ञा करो कि जितने दिन जीवित रहोगे, उतने दिन आर्यावर्त में आर्ष ग्रंथों की

महिमा स्थापित करोगे। अनार्ष ग्रंथों का खंडन करोगे और भारत में वैदिक धर्म की स्थापना में अपने प्राण तक अर्पण कर दोगे।

अन्त में शिष्य दयानंद, गुरु विरजानंद से प्रतिज्ञा करते हैं –

हे गुरुदेव! मैं अपने रक्त की अंतिम बूंद तक वेद, सत्य और धर्म का प्रचार-प्रसार करता रहूँगा।

इसके पश्चात् स्वामी दयानंद ने गुरुजी को साष्टांग दंडवत प्रणाम किया और मथुरा छोड़कर चले गये।

5. मुख्य शास्त्रार्थ :–

महर्षि दयानन्द जी ने अपने जीवन में अनेकों शास्त्रार्थ किये थे। इन शास्त्रार्थ में मुख्य निम्नलिखित हैं –

1. जयपुर शास्त्रार्थ, 2. कृष्णानंद शास्त्रार्थ, 3. हीरावल्लभ शास्त्रार्थ, 4. गोपालदास शास्त्रार्थ, 5. काशी शास्त्रार्थ

इन शास्त्रार्थों का मुख्य विषय मूर्तिपूजा और अवतारवार था। कोई भी पौराणिक पंडित वेदों में मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं कर सका। यहाँ तक कि काशी शास्त्रार्थ में महर्षि दयानंद ने लगभग 40 पौराणिक पंडितों को पराजित कर दिया। इन सब शास्त्रार्थों में महर्षि दयानंद ही विजयी रहे।

6. आर्यसमाज संस्थापना :–

महर्षि दयानंदजी ने आर्यसमाज की स्थापना करने से पूर्व अपने अनुयायियों के समक्ष बड़े मार्मिक व भावपूर्ण शब्दों में कहा था –

भाई, हमारा कोई स्वतंत्र मत नहीं। मैं तो वेद के अधीन हूँ और हमारे भारत में पच्चीस करोड़ आर्य हैं। कई-कई बातों में किसी-किसी में कुछ-कुछ भेद हैं, सो विचार करने से आप ही छूट जायेगा। मैं संन्यासी हूँ और मेरा कर्त्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हूँ इसके बदले में जो सत्य समझता हूँ, उसका निर्भयता से उपदेश करता हूँ। मैं कुछ कीर्ति का रागी नहीं हूँ। चाहे

कोई मेरी स्तुति करे वा निंदा करे, मैं अपना कर्त्तव्य समझ के धर्म बोध कराता हूँ। कोई चाहे माने या न माने। इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है।

–मुम्बई, आर्यसमाज का इतिहास पृ. ४
(लेखक दामोदर सुन्दरदास)

स्वामी दयानंदजी के इस कथन को सुनकर एक व्यक्ति ने पूछा कि यदि आर्यसमाज की स्थापना करें तो क्या इसमें सार्वजनिक हानि होगी? इसके उत्तर में स्वामी दयानंदजी ने कहा था –

आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज कर लो। इसमें मेरी कोई मनाही नहीं है। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रक्खोगे तो आगे गड़बड़ अध्याय हो जाएगा। मैं तो जैसा अन्य को उपदेश देता हूँ वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष्य में रखना कि मेरा कोई स्वतंत्र मत नहीं है। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ। इससे यदि कोई मेरी गलती आगे पाई जाये, युक्तिपूर्वक परीक्षा करके उस को भी सुधार लेना। यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जाएगा, और इसी प्रकार से "बाबा वाक्यं प्रमाण" करके इस भारत में नाना प्रकार के मतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मांध होके लड़के (लड़कर) नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है। इसमें यह भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो है कि इस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित हैं वे भी सब वेदों को मानते हैं, इसमें वेदशास्त्र रूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म एक्यता होगी। और धर्म एक्यता से सांसारिक और व्यावहारिक सुधारणा होगी और इसमें कला कौशल आदि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्य मात्र का जीवन सफल होके अंत में अपना धर्म बल से अर्थ, काम और मोक्ष मिल सकता है।

--मुम्बई, आर्यसमाज का इतिहास पृ. ४
(लेखक दामोदर सुन्दरदास)

उपर्युक्त दोनों वक्तव्यों से स्वामी दयानंद के आर्यसमाज संस्थापना विषयक विचार स्फटिक तुल्य स्पष्ट हो जाते हैं। वे यह स्वीकार करके चलते हैं कि वेद से भिन्न उनका कोई अन्य मत नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब आर्यसमाज की स्थापना को लेकर आर्यों में व्यापक सहमति देखी गई। इस प्रकार 10.4.1875 ई. दिन शनिवार सायंकाल 5 बजकर 30 मिनट पर मुम्बई के गिरगांव मुहल्ले में डॉ. मानिक चन्द की वाटिका में आर्यसमाज की स्थापना की गई। श्री गिरधारीलाल दयालदास कोठारी इसके सर्वप्रथम प्रधान और श्री सेवकलाल कृष्णदास सर्वप्रथम मंत्री चुने गये। उस समय आर्यसमाज के सदस्य की संख्या 100 थी। स्वामी दयानंदजी ने लोगों के आग्रह करने पर भी कोई पद स्वीकार नहीं किया। वे केवल साधारण सदस्य ही रहे।

हम देखते हैं कि महर्षि दयानंद जी ने सन् 1875 ई. में आर्यसमाज की स्थापना करके श्रेष्ठ समाज का सपना देखा था। परन्तु उनका यह सपना साकार नहीं हो पाया क्योंकि आर्य का अर्थ श्रेष्ठ है एवं समाज का अर्थ है समझ धारण करने वाला समूह अर्थात् आर्यसमाज का अर्थ हुआ श्रेष्ठ समझ धारण करने वाला संगठन। परन्तु दारुण दुर्भाग्य का विषय है कि आर्यसमाज अपने 10 नियमों से हटकर कर्मकाण्ड में ही उलझ कर रहा गया है और इनके कार्यकर्त्ता स्वयं को आर्य न कहकर आर्यसमाजी कहते हैं जिससे उनमें आर्यत्व का अभाव हो गया है। परिणामस्वरूप आर्यसमाज में श्रेष्ठ समझ धारण करने वाले व्यक्ति बहुत कम हैं। यहाँ तक कि इसके अधिकारी एवं कार्यकर्त्ता चुनाव में पद के लिये लड़ते झगड़ते हैं और कई बार तो कोर्ट तक भी चले जाते हैं। आर्यसमाज केवल एक वेदमंदिर बन कर रह गया। अतः कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर ने लिखा है--

जिन्हें संसार में संसार का उपकार करना था।
जिन्हें दुनियाँ में वैदिक धर्म का विस्तार करना था।।

अनाथों और अछूतों का जिन्हें उद्धार करना था।
जिन्हें निज देश और जाति का बेड़ा पार करना था।।
उन्हें देखो जो बाहम बरसरे पैकर (खुल्लम खुल्ला युद्ध) यहाँ बैठे हैं।
समाजों को मिटाने के लिए तैयार बैठे हैं।।

हम देखते हैं कि आज अधिकाँश आर्य समाजी महर्षि दयानंदजी के अनुगामी नहीं हैं अपितु अनुयायी मात्र रह गये हैं। यद्यपि ये दोनों शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं। परन्तु वैचारिक दृष्टि से इनमें बहुत बड़ा अन्तर है। अनुगामी वह व्यक्ति होता है जो कि अपने जीवन को मर्यादाओं, सिद्धान्तों एवं नियमों के अनुसार ढालता है। इसके विपरीत अनुयायी वह व्यक्ति होता है जोकि भीड़ में शामिल होकर जय जयकार करके अपनी स्थिति दर्ज कराता है। अतः अनुगामी बिरले व्यक्ति ही होते हैं और अनुयायी अनगिनत व्यक्ति होते हैं। जैसे महर्षि दयानंद जी के अनुगामी व्यक्ति थे स्वामी श्रद्धानंद जी, लेखराम जी, महात्मा हंसराज जी, पं० गुरुदत्त जी, लाला लाजपत राय जी आदि। वे स्वाध्याय में लगे तो इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी आदि के विद्वान् हिल गये और निरुत्तर होने पर छुरे को हथियार बनाया। वे शुद्धि में लगे तो चोटी व जनेऊ की मांग बढ़ गई। वे शिक्षा में लगे तो डी.ए.वी. कालेज, कन्या पाठशाला व गुरुकुलों के जाल बिछा कर रख दिये। वे राजनीति में आये तो लाठी गोली खाकर फांसी के फंदों पर झूल गये और अंग्रेज़ी सरकार को हिलाकर रख दिया।

हम देखते हैं कि गुरुकुल वालों ने पौराणिक भाइयों से यह सीख लेकर कि कर्मकाण्ड के बिना कमाई कहाँ है। आर्यसमाज जैसी संस्था जोकि वेद के सही ज्ञान को जनता के सामने रखकर सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये एक आन्दोलन था उसकी पहचान हवन बना दी। अतः आज आर्यसमाज में कर्मकाण्ड ही रह गया है। दिल्ली प्रादेशिक सभा ने दिल्ली में ही ऐसी बहुत सी नकली

आर्यसमाजें बंद करवाई जोकि लोभी आचार्यों ने घर से भागकर विवाह के संस्कार के लिये ही बनाई हुई थी। यहाँ तक कि घर में ही एक यज्ञशाला बना रखी थी जहाँ मोटी रकम लेकर घर से भागकर आये युवक युवतियों के विवाह संस्कार करवाये जाते थे। यही हाल शेष बड़े नगरों का भी है।

अतः हम समाज के समूचे आर्य समाजियों से सविनय निवेदन करते हैं कि वे आर्यसमाज को वेदमंदिर न समझें अपितु एक आंदोलन ही समझें जैसे महर्षि दयानंदजी ने चलाया था। आर्य समाजियों को चाहिए कि वे समूचे संसार के कल्याण के लिये कार्य करें तभी महर्षि दयानंदजी का सपना साकार होगा।

7. साहित्य सृजन :–

महर्षि दयानंद ने अपने जीवन में अनेक ग्रंथों की रचना की। इन में मुख्य निम्नलिखित ग्रंथ हैं :-

1. सत्यार्थप्रकाश, 2. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, 3. संस्कार विधि, 4. यजुर्वेद भाष्य, 5. ऋग्वेद भाष्य (6.62.2), 6. उपदेश मंजरी, 7. पंचमहायज्ञविधि, 8. व्यवहार भानु, 8. आर्योद्देश्यमाला, 10. आर्यभिविनय आदि।

सत्यार्थप्रकाश महर्षि दयानंद कृत उनकी अमर कृति है। इसके लिखने में उन्हें 2986 ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ा था।

8. महाप्रस्थान :–

महर्षि दयानंदजी जिस समय उदयपुर में प्रवचन दे रहे थे। उन्हीं दिनों सर्वश्री प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह के प्रार्थना पत्र आये थे। उनमें उन्होंने जोधपुर पधारने की प्रार्थना महर्षि दयानंदजी से की थी। इस प्रकार स्वामी दयानंदजी ने शाहपुरा के पश्चात् जोधपुर जाने का निमंत्रण-पत्र स्वीकार कर लिया था।

इसी प्रकार अजमेर के लोगों ने भी जोधपुर को राक्षस राज्य कहकर पुकारा और स्वामी दयानंदजी के अहित की कल्पना पर दुःख

का अनुभव किया । परन्तु इसका उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया :--

यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियाँ बनाकर जला भी दें, तो भी कोई चिंता नहीं । मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश दूँगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानंदजी शाहपुरा से चलकर अजमेर ठहर कर जोधपुर जाने के लिये 29.5.1883 ई. को मंगलवार को पाली पहुँचे । पाली और जोधपुर की दूरी 45 मील है । जोधपुर नरेश ने पाली से जोधपुर जाने के लिए स्वामी दयानंदजी के लिये सब सुविधाएं कर दी थी । इस प्रकार स्वामी दयानंदजी 31.5. 1883 ई. को गुरुवार को जोधपुर पहुँचे जहाँ रावराजा जवान सिंह ने उनका भव्य स्वागत किया ।

स्वामी दयानंदजी को जोधपुर में नज़रबाग़ के सामने मियां फैजुल्ला खां की कोठी में ठहराया गया । उनके पहुँचने का समाचार सुनकर कर्नल प्रतापसिंह व रावराजा तेजासिंह उनके दर्शनार्थ वहाँ पहुँचे । कर्नल प्रताप सिंह ने एक स्वर्णमुद्रा और 25 रुपये भेंट के रूप में दिये । स्वामी दयानंदजी के भोजन एवं सुरक्षा के लिए 6 सिपाही और 1 हवलदार का पहरा लगा दिया गया । सेवा के लिए 4 सेवक भी लगा दिये गये । महाराजा जसवंत सिंह स्वामी दयानंदजी के पास 26.6.1883 ई० के मिलने के लिए आये और 5 स्वर्ण मुद्राएं व 25 रुपये भेंट में दिये । महाराजा जसवंत सिंह जब फर्श पर ही बैठ गये तो उन्होंने कहा –

आप हमारे स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं । अतः आपके सामने नीचे आसन पर बैठने में ही हमारी शोभा है ।

कुशल-क्षेम पूछने के बाद महाराजा जसवंतसिंह ने स्वामी दयानंदजी से उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की । इस पर उन्होंने मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म का उपदेश दिया । महर्षि दयानंदजी ने जोधपुर में मुस्लिम धर्म पर आलोचनात्मक व्याख्यान दिया जिस को सुनकर फैजल्ला खां अत्यंत क्रोधित हो गये ।

स्वामी दयानंदजी के दर्शनों के लिये महाराजा जसवंत सिंह तीन बार उनके आसन पर पधारे और तीन ही बार उन्हें अपने निवासस्थान पर आमंत्रित किया गया। उधर जोधपुर में स्वामी दयानंदजी के शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी कि एक और घटना घट गई जिसने विरोधियों के बल को बहुत बढ़ा दिया। जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह का नन्हीं जान नामक वेश्या से गहरा संबंध था। एक दिन अपने निश्चित् नियम के अनुसार स्वामी दयानंदजी दरबार में पहुँचे। उस समय महाराज जसवंत सिंह के पास नन्हींजान आई हुई थी। स्वामी दयानंदजी के आने का समय जानकर महाराज जसवंत सिंह उसे डोली में रवाना कर रहे थे। डोली उठने से पूर्व ही स्वामी दयानंदजी को समीप आता देखकर महाराज जसवंत सिंह घबरा गये और डोली को स्वयं कंधा लगाकर उठा लिया। नन्हीजान वेश्या तो वहाँ से चली गई परन्तु उस दृश्य को देखकर स्वामी दयानंदजी का हृदय अत्यंत दुःखी हुआ। वेश्या प्रेम के घोर घृणित कुव्यसन का वे वैसे ही कड़ा खण्डन किया करते थे। सैंकड़ों पुरुषों का उन्होंने इस पाप पंक एवं दुर्व्यवसन की दलदल से उद्धार किया। स्वामी दयानंदजी ने महाराज जसवंत सिंह को कहा –

राजन्! राजा लोग सिंह समान समझे जाते हैं। स्थान-स्थान पर भटकने वाली वेश्या, कुतिया के सदृश है। वीर शार्दूल का कृपणा कुतिया पर प्रेम करना और आसक्त हो जाना सर्वथा अनुचित है। आर्य जाति की कुल-मर्यादा के विपरीत है। केसरी की कंदरा में, ऐसी कल्मष कुलषित कुक्करी के आगमन का क्या काम है?इस कुव्यसन के कारण धर्म-कर्म भ्रष्ट हो जाता है। मान-मर्यादा को बट्टा लगता हैं इस पाप-सोपान पर प्रथम पदार्पण करते ही पुनः पद-पद पर पुरुष का अधःपतन आप-ही-आप होता चला जाता है। इस दुर्व्यवसन को तिलांजलि देनी चाहिए।

नन्ही जान इस बात को जानती थी कि स्वामी दयानंदजी के उपदेश वेश्या व्यसन के विरुद्ध मोहिनी मंत्र का प्रभाव रखते हैं। यहाँ

तक कि वर्षों के महाव्यसनी व्यक्ति भी उनके केवल श्रवणमात्र से सुधर जाते हैं। उसे इस बात का भी पता चल गया था कि स्वामी दयानंदजी ने उसकी तुलना कुतिया के साथ की है। इन दोनों बातों से उसके कलेजे पर साँप लौटने लगे। वह ईर्ष्या द्वेष एवं शत्रुता की ज्वाला में जलने लगी।

जोधपुर में महर्षि दयानंदजी के प्रथम तीन मास तो निर्विघ्न निकल गये। परन्तु चौथे मास में बाधाएँ आरम्भ हो गई। 12.9. 1883 ई. को कल्लू नामक सेवक लगभग 600 रुपये, मोहरें एवं शाल लेकर खिड़की से भाग निकला। पुलिस को भी सूचित किया गया परन्तु उसका कुछ भी नहीं पता चला। 29.9.1883 ई. की रात्रि 9 बजे घौड़मिश्र (शाहपुर निवासी) नामक रसोइये ने दूध में संखिया, कांच और शक्कर मिलाकर दे दिया। स्वामी दयानंदजी दूध पीकर सो गये। थोड़ी देर के पश्चात् उदर पीड़ा के कारण जाग गये। उसी विकट व्याकुलता के कारण तीन बार उल्टी आई। स्वयं ही पानी के कुल्ले करते रहे। परन्तु किसी भी सेवक को नहीं जगाया। 30.9.1883 ई. उन्हें उठने में देरी हो गई। उठते फिर एक उल्टी आई। अब उन्हें संदेह हो गया कि उन्हें विष दिया गया है। अधिक उल्टियाँ आने के कारण शारीरिक दुर्बलता आ गई। अतः रावराजा तेजसिंह को सूचित किया गया। इसके पश्चात् डॉ० सूरजमल बुलाये गये और उन्होंने स्वामी दयानंदजी को देखा और दवाई दे दी। बुखार तो उतर गया परन्तु पेट दर्द बना रहा। 30.9.1883 ई० को सायंकाल 4 बजे महाराजा प्रतापसिंह को स्वामी दयानंदजी की बीमारी का समाचार मिला और उसने डॉ. अलीमर्दान खां जोकि साधारण योग्यता का डॉक्टर था स्वामी दयानंदजी के इलाज के लिए भेजा। डॉ. सूरजमल के इलाज को बंद करके डॉ अलीमर्दान जैसे अयोग्य डाक्टर को स्वामी दयानंदजी के बीमार शरीर को इलाज करने के लिए छोड़ देना अक्षम्य अपराध था। यहाँ तक कि डॉ. सूरजमल ने देवेन्द्र बाबू के समक्ष स्वीकार भी किया था कि अधिक

संख्या में दस्त आने एवं शरीर पर छाले पड़ जाने के कारण औषधि में अधिक कैलामेल (Calomel) नामक तत्व होना था और यह कुकर्म अलीमर्दान ने किया था ।

इस प्रकार स्वामी दयानंदजी ने अपने विष दाता घौड़मिश्र (शाहपुर निवासी) को पकड़ लिया और उसने अपराध भी स्वीकार कर लिया । उसे 500 रुपये देकर नेपाल भाग जाने का आदेश दिया ताकि महर्षि दयानंदजी के भक्त उसे मार न डालें और इस प्रकार उन्होंने अपने हत्यारे को अद्‌भुत क्षमा प्रदान की ।

जेठामल सोदा ने स्वामी दयानंदजी की बीमारी का समाचार मुम्बई, मेरठ, लाहौर आदि आर्यसमाजों को तार द्वारा भेज दिया । इस प्रकार 16.10.1883 ई. दिन मंगलवार को जसवंतसिंह, कर्नल प्रतापसिंह एवं रावराजा तेजासिंह आदि स्वामी दयानंदजी के पास आये । जसवंत सिंह ने स्वामी जी को बीमार देखकर बहुत दुःख व्यक्त किया और शीघ्र ही स्वस्थ होने की कामना भी की । इसके अतिरिक्त वेदभाष्य के लिए 2000 रुपये और उपहार में दो रेशमी परिधान उन्हें भेंट के रूप में भी दिये । इसके पश्चात् स्वामी दयानंदजी जोधपुर से चले गये ।

इसके पश्चात् स्वामी दयानंदजी पाली में 2 दिन ठहरे और 20.10.1883 ई. शनिवार को उन्होंने यहाँ से रेल मार्ग द्वारा आबूरोड़ के लिये प्रस्थान किया । 21.10.1993 ई. रविवार को वे आबूरोड़ स्टेशन पर उतरे । पर्वत पर चढ़ने के लिए पालकी की व्यवस्था पहले ही की जा चुकी थी । अब उन्हें पालकी में लिटा दिया गया और पर्वत पर ले जाने लगे । दो मील चढ़ने के बाद कहारों ने पालकी को एक पेड़ के नीचे सड़क के किनारे रख दिया और स्वयं आराम करने लगे । उस समय एक अद्‌भुत घटना घटी । उस समय डॉ. लक्ष्मण दास जो आबू पर्वत के सरकारी अस्पताल में कार्यरत थे । अपनी बदली का आदेश पाकर अजमेर जा रहे थे । वे घोड़े पर सवार होकर शिखर से उतर रहे थे । उन्होंने देखा कि काषाय वस्त्रधारी एक

संन्यासी अर्द्धमूर्छित अवस्था में सड़क के किनारे एक पालकी में पड़े हैं । परिचय पूछने पर पता चला कि ये महर्षि दयानंदजी हैं । स्वामी दयानंदजी की ऐसी शोचनीय दशा देख कर डॉ. लक्ष्मण दास के नेत्रों में आँसू भर आये । उन्होंने तुरन्त थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् 3 बार एमोनिया की दवा दी । स्वामी दयानंदजी की मूर्छा दूर हो गयी । उन्होंने आँख खोली और कहा –

ऐसा लगता है किसी ने मुझे अमृत पिलाया है ।

साथ के लोगों ने लक्ष्मण दास का परिचय दिया और स्वामी दयानंदजी फिर मूर्छित हो गये । इस प्रकार रात के 8 बजे स्वामी दयानंदजी आबू पर्वत पर पहुँचे और जोधपुर के राजकीय आवास गृह में ठहराये गये । उधर डॉ. लक्ष्मण दास भी स्वामी दयानंदजी के साथ आबू पर्वत पर वापिस आ गये । उन्होंने एक औषधि तैयार करके स्वामी दयानंदजी को दी । जिससे उन्हें काफी लाभ हुआ । दस्तों में कमी आई, हिचकी रुक गई और चेतना यथापूर्व बनी रही । स्वामी दयानंदजी आबू पर्वत पर 6 दिन तक रहे । डॉ. लक्ष्मण दास को पुनः आदेश मिला कि वे शीघ्र ही अजमेर पहुँच कर अपना कार्यभार संभाले । इस के बाद उन्होंने मुख्य चिकित्सा अधिकारी से दो मास का अवैतनिक अवकाश मांगा ताकि वे स्वामी दयानंदजी की बीमारी का इलाज कर सकें । इस पर डॉ. स्पेसर ने आदेश दिया--

तुम अजमेर जाओ मैं तथा डॉ. गुरुचरण दास स्वामी दयानंदजी को संभाल लेंगे ।

इस पर डॉ. लक्ष्मण दास ने नौकरी से त्यागपत्र देकर सेवक द्वारा मुख्य चिकित्सा अधिकारी को भेज दिया । परन्तु जब स्वामी दयानंदजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने त्याग पत्र को ही फाड़ दिया । डॉ. लक्ष्मणदास ने दोबारा त्याग पत्र लिखकर भेजा जो मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने अस्वीकार कर दिया । अंततः डॉ. लक्ष्मण ने अजमेर जाने का निर्णय किया और स्वामी दयानंदजी के लिए 3 दिन की दवाई भी लिख दी थी और साथ ही निवेदन किया कि

वे स्वामी दयानंदजी को लेकर अजमेर आये ताकि वहाँ पर उनका भली भाँति इलाज हो सके। सेवकों ने स्वामी दयानंदजी की सेवा सुश्रुषा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ठाकुर भूपाल सिंह जोकि अलीगढ़ के निवासी थे और जोधपुर से स्वामी दयानंदजी के साथ आये थे स्वामी दयानंदजी के मलमूत्र को उठाने और मल से सने हुए कपड़ों को साफ करने में संकोच नहीं किया। इसलिए आर्यसमाज भूपालसिंह का सदा कृतज्ञ रहेगा।

इस प्रकार 26.10.1883 ई. शुक्रवार को स्वामी दयानंदजी को अजमेर के लिए ले जाया गया। आबूरोड़ से उन्हें प्रथम श्रेणी के डिब्बे में लिटा दिया गया। इस प्रकार जब रेलगाड़ी सायं 4 बजे रेलवे स्टेशन पर पहुँची तो स्वामी दयानंदजी प्रायः मूर्छित अवस्था में थे। चार व्यक्तियों ने उन्हें डिब्बे से उतारा और पालकी में लिटा कर भिनाय राजा की कोठी पर ले जाकर चारपाई पर सुला दिया। डॉ. लक्ष्मण दास को समाचार दे दिया और 27.10.1883 ई. को उन्होंने फिर स्वामी दयानंदजी की बीमारी का इलाज आरंभ कर दिया। उन्होंने स्वामी दयानंदजी की स्थिति को देखकर कह दिया किसी कुपथ्य के कारण निमोनिये का स्वामी दयानंदजी पर आक्रमण हुआ है। 30.10.1883 ई. दिन मंगलवार स्वामी दयानंदजी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया तो उन्होंने स्वयं कह दिया। इस प्रकार सायंकाल के 4 बज गये। स्वामी दयानंदजी ने नाई को बुलाकर हजामत करने को कहा। परन्तु भक्तों ने निवेदन किया कि उस्तरा न फिराये। छाले-फुंसिंया कट कर रक्त बहने लगेगा। परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि इसकी कोई चिंता नहीं। हजामत करवा कर उन्होंने नाखून भी कटवाये। फिर गीले तौलिये से सिर को पोंछकर सिरहाने के सहारे चारपाई पर बैठ गये।

इस प्रकार साढ़े चार बजे स्वामी दयानंदजी ने सब दरवाजे खुलवा दिये। गुरुदत्त, जीवनदास आदि सब भक्तों को अपनी पीठ

के पीछे खड़े होने का आदेश दिया। इसका भाव था मेरे बाद मेरे आदेशों का पालन करो। फिर सायंकाल 6 बजे पूछा आज कौन सा पक्ष, वार एवं तिथि है। फिर टकटकी लगाये निर्निमेष नेत्रों से भक्तों की ओर देखते रहे। इसके पश्चात् वेदमंत्रों का पाठ करने लगे फिर अपने सर्वप्रिय मंत्र "विश्वानिदेव" बहुत बार उच्चारण किया। कुछ समय के लिए समाधिस्थ हो गये। फिर आँखें खोलकर अंतिम शब्द कहे –

हे दयामय सर्वशक्तिमान परमेश्वर, तेरी यही इच्छा है। तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! तूने अच्छी लीला की।

महर्षि दयानंदजी के महाप्रस्थान पर एक उर्दूशायर ने भी लिखा है :--

मरने वाले के होठों पे तबस्सुम की झलक,
मौत ने वस्ल का पैग़ाम दिया है जैसे,
पता नहीं यह मौत थी या यार का पैग़ाम था।

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि इस संसार में अनेक महान् पुरुषों ने जन्म लिया और अनेक कल्याणकारी व महान् कार्य किये। परन्तु किसी में कोई गुण तो किसी में कोई और अन्य गुण, जैसेकि यदि कोई विद्वान् है तो प्रभुभक्त नहीं और प्रभुभक्त है तो योगी नहीं, यदि योगी है तो समाज सुधारक नहीं, यदि अखण्ड ब्रह्मचारी है तो संन्यासी नहीं, यदि अच्छा वक्ता है तो लेखक नहीं, यदि लेखक है तो सदाचारी नहीं, यदि परोपकारी है तो कर्मठ नहीं, यदि कर्मठ है तो त्यागी नहीं, यदि त्यागी है तो देशभक्त नहीं, देशभक्त है तो योद्धा नहीं, यदि योद्धा है तो शुद्ध आहारी नहीं, यदि शुद्ध आहारी है तो बलिष्ठ नहीं, यदि बलिष्ठ है तो सुन्दर नहीं, यदि सुन्दर है तो सरल नहीं, यदि सरल है तो दयालु नहीं, यदि दयालु है तो संयमी नहीं, यदि संयमी है तो उदार नहीं।

इस प्रकार यदि हम निष्पक्ष होकर विचार करें तो उपरोक्त ये

सभी गुण अकेले महर्षि दयानंदजी में दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः महर्षि दयानंदजी का चरित्र गुणों की खान है। अतः एक कवि के शब्दों में –

होते हैं कुछ लोग जो इतिहास सुनाया करते हैं,
कमी नहीं है उनकी जो इतिहास चुराया करते है।
पर नभ झुकता उनके आगे धरा गीत उन्हीं के गाती,
अपने पावन कर्मों से जो इतिहास बनाया करते हैं।।

इसी प्रकार एक उर्दूशायर लिखते हैं–

गिने जायें मुमकिन हैं, सहरा (रेत) के जर्रे।
समुन्दर के कतरे, फलक (आसमान) के सितारे।।
मगर तेरे अहसान स्वामी दयानंद।
गिने जायें मुमकिन कैसे हैं सारे।।

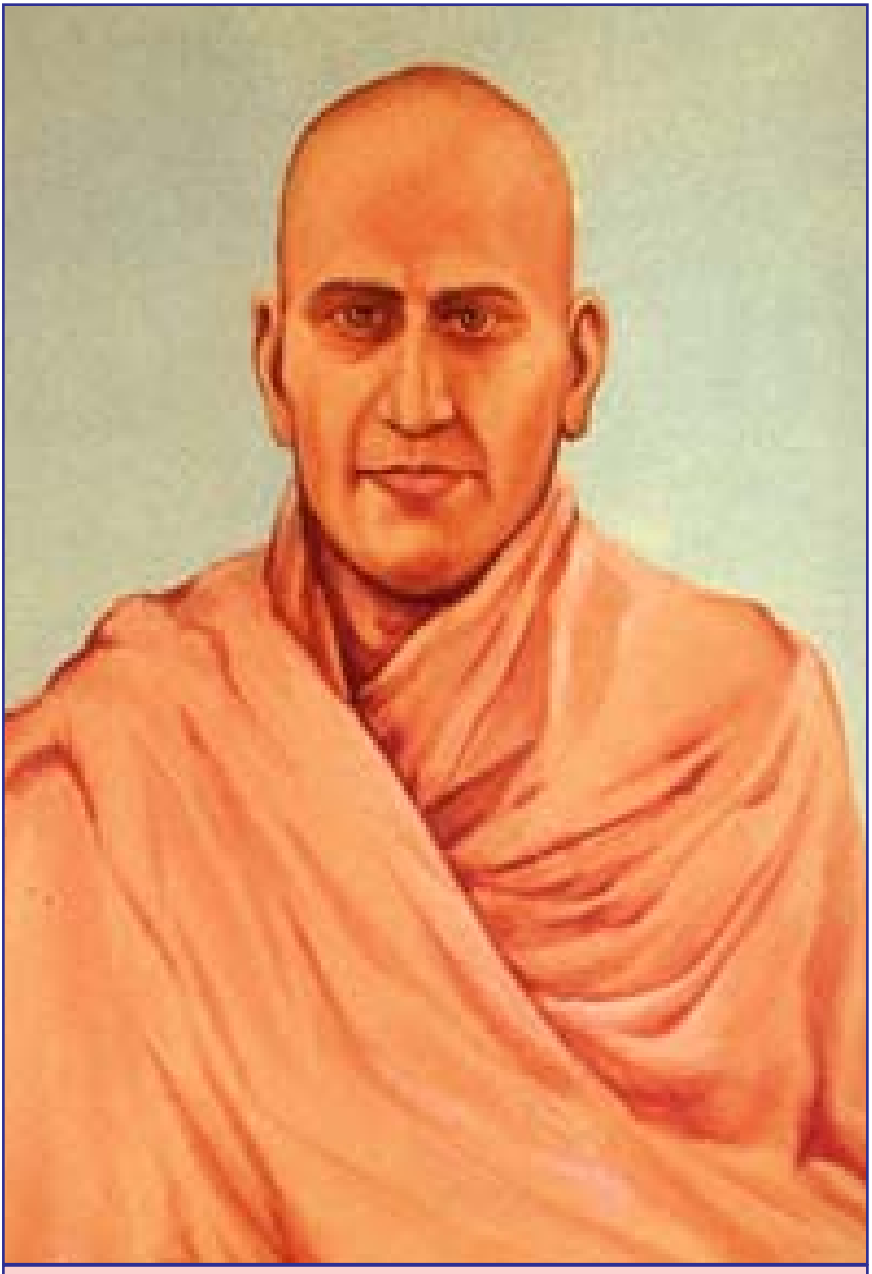

स्वामी श्रद्धानन्द जी

3. स्वामी श्रद्धानंद

मुन्शीराम एवं स्वामी श्रद्धानंद ! एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं । परन्तु दोनों में अन्तर उतना ही है, जितना एक तख्ते के दोनों ओर के पाटों में, जिन्हें एक ओर काला एवं एक ओर सफेद पोत दिया गया हो । महर्षि दयानंद जी ने आर्य समाज के जो 10 नियम बनाये स्वामी श्रद्धानंद जी उन नियमों को अक्षरशः जीवन में कार्यान्वित करने वाले महापुरुष थे । उन्होंने जीवन की पगडंडियों में भटकाव के भँवर भी देखे थे । परन्तु जब महर्षि दयानंद रूपी पारसमणी से उनका सम्पर्क हुआ तो वे सर्वात्मा कुन्दन बन गये और जीवन की उन ऊँचाइयों को छुआ जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था । महर्षि दयानंद जी के सम्पर्क में आकर वे न केवल आस्तिक बने अपितु उनके सारे जीवन का कायाकल्प हो गया ।

1. बाल्यावस्था :–

आप का जन्म 22.2.1956 ई० में पंजाब के जिला जालन्धर के तलवन ग्राम में लाला नानकचन्द के घर हुआ । ये छः भाई-बहन थे । 1. सीता राम, 2. प्रेम देवी, 3. मूला राम, 4. द्रौपदी, 5. आत्मा राम, 6. मुन्शी राम । इनके परदादा का नाम सुखानंद और दादा का नाम गुलाब राय था । कुल-पुरोहित ने राशि देखकर 'बृहस्पति' नाम रखा, परन्तु घरेलु नाम मुंशीराम था और यही नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ । पिता उत्तर प्रदेश में पुलिस के अधिकारी थे और सहारनपुर, बलिया, बनारस, मिरजापुर, गाजीपुर, बनारस आदि नगरों में कोतवाल रहे । पुलिस विभाग में व्याप्त खानपान के दोषों से ग्रस्त होते हुए भी नानकचन्द तुलसी रामायण के भक्त थे और बनारस में रहते हुए प्रतिदिन रात्रि को 9 बजे से 10 बजे तक रामायण-पाठ का सत्संग लगाते थे । गला मधुर था । सत्संग में जनता के अतिरिक्त पुलिस का अमला और हिरासत में रखे मुजरिम भी शामिल होते थे ।

2. राम-भक्त पिता : मुजरिम का आत्म-समर्पण :–

एक दिन एक विचित्र घटना हुई । नानकचन्द जी रामायण का वह प्रसंग सुना रहे थे जिसमें गोस्वामी ने बड़ी तड़प और उद्विग्नता के सहित अपने अपराधों के लिए प्रभु से क्षमा-याचना की है । निम्न दोहा उन्होंने सस्वर पढ़ा–

सुवन सुजत सुन आयो, प्रभु भंजन भव भोर ।
त्राहि त्राहि आरत तरन, सरन सुखद रघुवीर ।।

इसी समय श्रोतागण में से एक व्यक्ति उठा और हाथ जोड़ बोला-

मैं वह व्यक्ति हूँ जिसने आज से दो साल पहले एक खून किया था । पुलिस तभी से मेरी तलाश में है पर मैं अभी तक फरार ही रहा । आज आपके मुख से गोस्वामी तुलसी की विनती सुन मैं अपना जुर्म इकबाल करता हूँ । उसने तत्काल इकबाल पर अपने हस्ताक्षर कर दिये ।

मुंशी राम जी अपनी जीवन कथा में लिखते हैं–

मुझ पर इस दृश्य का बड़ा प्रभाव पड़ा और अपने जीवन में कई बार इसका स्मरण आता रहा ।

3. शिक्षा काल में ही पथभ्रष्ट :–

मुंशीराम की सारी शिक्षा बनारस के सरकारी स्कूल और इलाहाबाद के म्योर सैण्ट्रल कॉलेज में हुई । सम्पन्न परिवार, पुलिस अफसर के पुत्र और युवावस्था–इन तीनों पृष्टभूमियों के एक साथ मेल के कारण मुंशीराम पथभ्रष्ट हो गये । एक ओर कॉलेज में अनीश्वरवादी पाश्चात्य शिक्षा और दूसरी ओर घर के नियंत्रण से दूर ऐशो-आराम का नागरिक जीवन इन दोनों के फलस्वरूप मुंशीराम का जीवन संयमहीन हो गया । दूसरी ओर जीवन में एक ऐसा दौर भी आया जब यह युवक कट्टर मूर्ति-पूजक, रामायणपाठी और प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में गंगा-स्नान करने वाला था । तीसरे दौर में मिरजापुर में

रहते हुए कमर में छुरी बाँध गुण्डों की नकल और साथ ही साथ कुश्ती, गतका, लाठी चलाते हुए भी मुंशीराम को देखा जाता है। काशी से अव्वल दर्जे में मैट्रिक परीक्षा पास की। वहाँ रहते हुए मन्दिरों और गंगा-घाटों पर पण्डों-पुजारियों के पाखण्ड, दम्भपूर्ण और निकृष्ट जीवन को देख मुंशीराम के हृदय में इतनी घृणापूर्ण प्रतिक्रिया हुई कि उन्होंने ईसाई मत ग्रहण करने का संकल्प लिया। 1878 ई० में मुंशीराम इलाहाबाद के म्योर सैंट्रल कॉलिज की एफ०ए० कक्षा में दाखिल हो गये। परन्तु परीक्षा के समय आप बीमार हो गये और फेल हो गये। फेल होकर आपने कॉलेज छोड़ दिया और अपने पिता जी के पास बरेली आ गये।

4. ईसाई बनने का निश्चय :–

बनारस के रोमन कैथोलिक पादरी से बपतिस्मा लेने का समय आदि भी निश्चित् हो गया। इसी प्रसंग में मुंशीराम एक दिन दोपहर को पादरी के घर गया और जब पर्दा हटाकर सीधा कमरे में घुसा, तब पादरी को एक नन्स (अविवाहित ईसाई धर्मप्रचारिका) के साथ व्यभिचार-लीला में लिप्त देख अवाक् रह गया और तीव्र घृणा की भावना के साथ उलटे पांव वापस आ गया।

5. विवाह : पत्नी ने जीवन बदल दिया :–

25 वर्ष की आयु में मुशीराम का विवाह जालन्धर के राय सालिगराम की कन्या शिवदेवी से कट्टर पौराणिक पद्धति से हुआ। लड़की सम्भवतः प्राईमरी पास, सामान्य और अत्यंत लजीली थी जबकि इस युवक का दिमाग़ अंग्रेज़ी उपन्यासों को पढ़ कर वहाँ की नायिकाओं की कल्पना से ग्रस्त था। लड़की को देख निराशा हुई परन्तु यह बन्धन तो अटूट था। अब उन्होंने उसे पढ़ाने का निश्चय किया। कुछ ही दिनों में शिवदेवी ने अपनी सेवा, पतिपरायणता और धर्मनिष्ठता से मुंशीराम के हृदय को जीत लिया। शिवदेवी ने अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से मुंशीराम को मद्यपान के कुव्यसन से छुड़ा दिया। इसी के कारण वे ऋणी हो गये थे और शराब की दुकान का पारसी

मालिक रोज कर्ज़ वसूल करते घर आता। शिवदेवी को जब इस घटना का पता चला उसने तत्काल, निःसंकोच अपने पितृगृह के सारे आभूषण पति के सम्मुख रख दिये। मुंशीराम एक ओर ऋणमुक्त हो गये, दूसरी ओर शिवदेवी की धर्मनिष्ठा से अत्यंत प्रभावित हुए। इन दिनों मुंशीराम बरेली में थे और इनके पिता लाला नानकचन्द भी वहाँ कोतवाल हो आये थे।

6. बरेली में महर्षि दयानंद के दिव्य दर्शन :–

इसी समय महर्षि दयानंद बरेली पधारे। उनकी सभा की व्यवस्था का दायित्व सरकार की ओर से नानकचंद जी को दिया गया। ऋषि के भाषण और तेजपुंज व्यक्तित्व से कोतवाल साहब पहले दिन ही बड़े प्रभावित हुए। घर में उन्होंने नास्तिक मुंशीराम को इस अद्वितीय महात्मा का सारा वृतान्त सुनाया और कल अपने साथ चलने की प्रेरणा दी। नास्तिक मुंशीराम महर्षि दयानंद जी के पास पहुँचे और ईश्वर के संबंध में अनेक प्रश्न पूछे। महर्षि दयानंद के युक्तियुक्त उत्तर सुनकर योरुप के नास्तिकों की युक्तियाँ निर्मूल प्रतीत होने लगी। युक्तियों का खण्डन हो गया। परन्तु हृदय संतुष्ट नहीं हुआ। आपने महर्षि दयानंद जी से कहा–

महाराज, आपने मुझे निरुतर तो कर दिया, परन्तु ईश्वर पर विश्वास नहीं करवाया।

महर्षि दयानंद जी ने उत्तर दिया–

भाई, मैंने कब दावा किया था कि तुम्हें विश्वास करा दूँगा? मैं तो केवल प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ। विश्वास तो तभी होगा जब प्रभु कृपा होगी।

वही हुआ भी। एक दिन प्रभु कृपा हुई नास्तिक मुंशीराम ने अपनी जीवन-नौका को विशाल संसार सागर में ईश्वर-विश्वास के भरोसे पर छोड़ दिया।

पहले दस मिनट के उपदेश ने ही युवक को मंत्रमुग्ध कर दिया। अब तो ऋषि-दर्शन के लिए मुंशीराम पागल हो गये। सत्संग

में सबसे पहले आते और बड़ी तन्मयता से ऋषि-वचनों को सुनते। महर्षि दयानंद के जादू का वर्णन मुंशीराम के शब्दों में ही सुनिए–

उस दिव्य आदित्य मूर्ति को देख कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई परन्तु जब पादरी टी०जे० स्कॉट और दो तीन अन्य यूरोपियनों को उत्सुकता से बैठे देखा, तो श्रद्धा और भी बढ़ी। अभी दस मिनट भी भाषण नहीं सुना था कि मन में विचार किया – यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृतज्ञ होते हुए ऐसी युक्तियुक्त बातें करता है कि विद्वान् दंग हो जाएं। व्याख्यान परमात्मा के निज नाम 'ओ३म्' पर था। वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद कभी नहीं भूल सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना ऋषि की आत्मा का काम था।

7. लाहौर में वकालत की शिक्षा :–

दुर्भाग्य से मुंशीराम ज्वराक्रांत होने के कारण ऋषि के सत्संग में नहीं जा सके और उधर ऋषिवर बरेली से प्रस्थान कर गये थे। पिताजी की विशेष चेष्टा से और सरकारी अफसरों की कृपा से मुंशीराम को पुलिस विभाग में अस्थायी नायब तहसीलदारी मिली, परन्तु वहाँ गोरे अधिकारियों के अपमानपूर्ण व्यवहार से दुःखी हो कुछ दिनों में ही त्यागपत्र दे घर वापस आ गये। फिर पिताजी के एक वकील मित्र के परामर्श पर मुंशीराम लाहौर में वकालत पढ़ने चले गये।

8. सत्यार्थप्रकाश से कायापलट :–

मुंशीराम को वकालत की परीक्षा के लिए, प्राय लाहौर जाना पड़ता था। इसी प्रसंग में उनका सम्पर्क पहले ब्रह्मसमाज से हुआ। कई शंकाओं का वहाँ समाधार न हो सका तब आर्यसमाज से सम्पर्क हुआ और महर्षि दयानन्द के 'सत्यार्थप्रकाश' का ध्यान आया। अब इस पुस्तक को प्राप्त करने की धुन सवार हुई। बच्छोवाली आर्य समाज और जिस एक व्यक्ति के पास यह पुस्तक थी-दोनों के बीच

दिन में कईं घंटे चक्कर लगा। अन्त में शाम को 'सत्यार्थप्रकाश' मिला।

9. आर्य समाज में प्रवेश : जालन्धर में वकालत :–

कई दिन के गम्भीर स्वाध्याय के पश्चात् मुंशीराम 1885 ई० में आर्य समाज के सभासद् बन गये। अब उन पर आर्य समाज का खूब रंग चढ़ा। लाहौर से मुख्तारी की परीक्षा पास कर जालन्धर में वकालत प्रारंभ कर दी। इस क्षेत्र में ये खूब चमके। झूठे मुक़द्दमे नहीं लेते थे। एक बार अदालत में एक मुक़द्दमे की पैरवी करते हुए जज ने सशंकित भाव से मुंशीराम की ओर देखा तो वे तत्काल समझ गये कि दाल में कुछ काला है। उसी क्षण मुक़द्दमे को वहीं बीच में छोड़कर अदालत से वापस आ गये। यद्यपि जज ने बहुत समझाया। मुक़द्दमे की पैरवी बीच में ही छोड़ सारी फीस मुवक्किल को वापस दे दी। कुछ समय के लिए तो इसका उल्टा प्रभाव उनके धंधे पर पड़ा। परन्तु कुछ समय के पश्चात् मुंशीराम की सत्यवादिता का सिक्का जम गया और वे जालंधर के प्रमुख वकीलों में गिने जाने लगे। अतः मुंशीराम का 1885 ई० से 1926 ई० तक का जीवन धर्म सेवा में पूर्ण हुआ।

10. शुद्धि और सामाजिक सुधारों में अग्रगण्य :–

वकालत के धंधे की परवाह न करते हुए बड़े उत्साह के साथ आर्य समाज का काम करने लगे। प्रभात-फेरी निकालते, मुहल्लों में रात को सत्यार्थप्रकाश की कथा करते और रविवार को देहात प्रचार के लिए जाते। जालन्धर पौराणिकों का गढ़ था। मुंशीराम ने शास्त्रार्थों द्वारा इस गढ़ की दीवारों को गिरा दिया। रहतियों की शुद्धि की जिस का एक ओर सिख और दूसरी ओर पौराणिक दोनों ने विरोध किया। अपनी दूसरी पुत्री का विवाह जात-पाँत तोड़ कर किया। उस समय इस इलाके का यह प्रथम विवाह था जब एक उच्चवंशीय खत्री परिवार की लड़की का विवाह अरोड़वंशीय युवक

से किया गया हो। मुंशीराम को जाति-बहिष्कृत किये जाने की धमकी दी गई। परन्तु यह अपने सिद्धान्तों पर अटल रहे। अन्ततः बिरादरी को हार माननी पड़ी। उन दिनों लड़कियों को पढ़ाना पाप समझा जाता था। मुंशीराम जी ने अपने साले लाला देवराज जी के सहयोग से इस दिशा में भी पहल की। पहले नगर में और फिर नगर से बाहर कन्याओं की पाठशाला खोल दी जो इस समय 'कन्या महाविद्यालय' के नाम से समूचे देश में विख्यात और मूर्धन्य शिक्षा-संस्था है।

11. शुद्ध व्यक्तिगत जीवन : पत्नी का देहान्त :–

इन सब सार्वजनिक समाज-सुधार की प्रवृत्तियों के साथ-साथ मुंशीराम अपने व्यक्तिगत जीवन को आचार्य ऋषि दयानंद के बताये मार्ग पर अनवरत चल रहे थे। संध्या, अग्निहोत्र, वेद का स्वाध्याय, प्रातः-भ्रमण आदि नियमों का दृढ़ता से पालन करते थे। परिवार में पर्दे का अन्त कर दिया था और पत्नी भी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों को कुछ सीमा तक समझने लगी थी। मुंशीराम जी ने मांस-भक्षण तो पहले ही छोड़ रखा था। अब हुक्का, शतरंज, ताश आदि के दुर्व्यसन भी छोड़ दिये थे। 31.8.1891 ई० को इनकी पत्नी शिवदेवी का निधन हो गया, वह चार सन्तानें छोड़ गयी जिनकी आयु 2 वर्ष से 10 वर्ष तक की थी। पत्नी ने मरने के पूर्व पति को दूसरा विवाह करने की अनुमति दे दी थी और उसकी मृत्यु के पश्चात् आत्मीय जनों ने भी इसके लिए बहुत जोर दिया। परन्तु ऋषि-भक्त मुंशीराम अपने निश्चय पर अटल रहते हुए पुनर्विवाह करने को राजी नहीं हुए। उन्होंने यही कहा -

अब तक मैं इन बच्चों का पिता था। अब माता की कमी भी मैं ही पूरी करूँगा।

12. जनता की ओर से 'महात्मा' की उपाधि :–

मुंशीराम जी के इस पवित्र, सात्विक और धर्मनिष्ठ जीवन का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। अपने नाम के आगे ये 'जिज्ञासु'

लिखने लगे थे। उधर, जनता ने इनके उच्च जीवन के प्रति आदर प्रकट करने के लिए स्वतः ही इन्हें 'महात्मा' की उपाधि से अलंकृत कर दिया। इस प्रकार अब ये 'महात्मा मुंशीराम जिज्ञासु' के नाम से समस्त आर्य जगत् में विख्यात् हो गये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान के आप प्रधान भी निर्वाचित हुए। इस प्रकार आर्य समाज के नेताओं में आप मूर्धन्य थे। पं० गुरुदत्त की 26 वर्ष की युवावस्था में मृत्यु और पं० लेखराम आर्यपथिक की एक मुस्लिम धर्मान्ध द्वारा हत्या के फलस्वरूप आर्य-समाज के आन्दोलन में शिथिलता आने का भय हो गया था। परन्तु आप ने प्रतिनिधि सभा की बागडोर सँभालकर प्रचार कार्य में शिथिलता के विपरीत प्रबल उत्साह भर दिया।

13. मुनिवर गुरुदत्त जी से घनिष्ट संबंध :–

महर्षि दयानंद के निधन के पश्चात् पं० गुरुदत्त और ला० जीवनदास की विशेष चेष्टा से लाहौर के आर्य पुरुषों ने ऋषि की पुण्य स्मृति में 'एंग्लो वैदिक स्कूल' खोलने का निश्चय किया। इस योजना के परिणामस्वरूप पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का लक्ष्य यह था कि इस संस्था में वेद और आर्ष ग्रंथों के अध्यापन से आर्यसमाज के प्रचारक तैयार किये जायेंगे और यह संस्था 'उपदेशक विद्यालय' का कार्य करेगी। पंडित जी की गहन विद्वत्ता, कुशाग्र मेधा, त्याग, तपस्या और साधु-स्वभाव पर आर्य जनता मुग्ध थी। उन्होंने अपने स्वास्थ्य और निजी सुख की तनिक भी परवाह न करते हुए दिन रात प्रचार-यात्राएं कर धन इकट्ठा किया और जनता ने भी खुले हाथों उन्हें दिया। परन्तु जिस समय यह स्कूल खुला बाद में 'डी०ए०वी० कालेज' के रूप में आया, तब इसकी प्रबन्ध समिति के पाश्चात्य शिक्षाप्रिय सदस्यों ने इसका रूप ही बदल दिया। वेद, आर्ष ग्रंथ और संस्कृत की इसमें सर्वथा उपेक्षा की गई। आर्य जनता में इससे बड़ा विक्षोभ फैला। गुरुदत्त जी को बड़ा आघात लगा परन्तु वे अपने

जीवन के अन्तिम क्षण तक धन-संग्रह आदि द्वारा पूर्ण सहयोग देते रहे। मुंशीराम जी मुनिवर गुरुदत्त से बड़े प्रभावित थे। दोनों में अभिन्न मित्रता थी।

14. आर्यसमाज में दो दल : गुरुकुल दल का नेतृत्व :–

विद्यार्थी जी की मृत्यु के बाद पंजाब के आर्यजनों में इस मतभेद ने गृह-कलह के रूप में उग्ररूप धारण कर लिया। इसका सूत्रपात पहले डी०ए०वी० कॉलेज में शिक्षा के नाम पर हुआ, परन्तु कुछ ही समय बाद इसने 'मांस-भक्षण' और 'घास-भक्षण' का रूप धारण कर लिया। कॉलेज-पक्ष वाले मांस-भक्षण के और अन्य लोग मांस-विरोधी पक्ष के थे। यह गृह कलह बढ़ता हुआ लाहौर में दो आर्यसमाजों के रूप में स्थिर हो गया। घास पार्टी या मांस विरोधी दल ने 'बच्छोवाली समाज' पर कब्ज़ा कर लिया और मांस-भक्षण या कॉलेज-समर्थकों ने अपना पृथक समाज 'अनारकली आर्य समाज' के नाम से स्थापित किया।

पहले दल का नेतृत्व महात्मा मुंशीराम के हाथ में था और दूसरे दल के नेता पहले राय मूलराज लाला लाजपतराय और बाद में महात्मा हंसराज थे। महात्मा हंसराज डी०ए०वी० कॉलेज के प्रिंसिपल थे। मुंशीराम जी ने सभा के अन्तर्गत 'वेदप्रचार निधि' स्थापित कर अपनी सारी शक्ति वेद-प्रचार पर केन्द्रित कर दी और सभा के मुख्य कार्यालय के भवन का नाम 'गुरुदत्त-भवन' रखा। महात्मा जी ने आर्य-समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए जालन्धर से उर्दू में 'सद्धर्म-प्रचारक' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह पत्र यद्यपि मुंशीराम राम जी का निजी पत्र था। परन्तु बाद में महर्षि दयानंद के लक्ष्य हिन्दी प्रचार को दृष्टि में रखते हुए महात्माजी ने, घाटा सहकर भी इस पत्र को रातों-रात हिन्दी में कर दिया। जिस समय आप सभा के प्रधान थे, आपने यह पत्र सभा को ही सौंप दिया।

15. गुरुकुल की स्थापना का दृढ़ निश्चय :–

महात्मा मुंशीराम प्रतिदिन ऋषिकृत 'सत्यार्थप्रकाश' का स्वाध्याय करते थे। ऋषि ने तीसरे समुल्लास में बालक- बालिकाओं के लिए पृथक्-पृथक् गुरुकुल खोलने का निर्देश किया है। महात्मा जी ने ऋषि के इस आदेश को कार्यान्वित करने का निश्चय किया। 26.11.1898 ई० में आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव स्वीकार किया। अब प्रश्न धन का पैदा हुआ। महात्मा जी ने घोषणा कर दी कि जब तक मैं गुरुकुल के लिए 30000 रुपये इकट्ठे नहीं कर लूंगा, तब तक घर वापस नहीं आऊँगा। इस दृढ़ निश्चय के साथ आपने समूचे देश का दौरा किया। धन संग्रह के लिए आप 7 महीने तक भारत का भ्रमण करते रहे। 8.4.1900 ई० तक 40,000 रुपये एकत्र हो गया। लाहौर में समस्त आर्यजनों की ओर से आपका इस सफलता पर विशेष अभिनन्दन किया गया।

गुरुकुल का विचार उस समय देशवासियों के लिए एकदम नया था। यद्यपि भारत के प्राचीन साहित्य में गुरुकुल का प्रभूत वर्णन है परन्तु इस समय की भारतीय जनता इस प्रणाली को लगभग भूल चुकी थी। महर्षि दयानन्द ने ही राष्ट्र जागृति की दिशा में इस प्राचीन पद्धति की ओर ध्यान आकृष्ट किया और महात्मा मुंशीराम ने आचार्य श्री के इस निर्देश को अविचल संकल्प के साथ कार्यान्वित करने का निश्चय किया। पाश्चात्य शिक्षा के कुछ अन्ध अनुयायियों ने इसका मजाक यह कहकर उड़ाया कि ''कौन माता-पिता अपने 6-7 वर्ष के लाडले बच्चों को जंगल में पढ़ने के लिए भेजेगा।'' मुंशीराम ने इसका मुँहतोड़ उत्तर इस घोषणा के साथ दिया कि ''मेरे दोनों लड़के इस गुरुकुल में प्रविष्ट होंगे।'' फिर गुरुकुल कहाँ स्थापित किया जाए, यह प्रश्न पैदा हुआ।

16. महात्मा जी का गुरुकुल को सर्वस्व दान :–

जिला बिजनौर के ऋषि-भक्त मुंशी अमर सिंह ने हिमालय पर्वत की श्रंखला में, हरिद्वार से लगभग 5-6 मील दूर, गंगा के पास

शिवालिक की पहाड़ियों की तराई में आबाद कांगड़ी ग्राम और उसके साथ लगी गंगा-तटवर्ती विशाल भूमि सभा को गुरुकुल के लिए भूमि दान दे दी। फलतः 24.3.1902 ई० को 14 ब्रह्मचारियों के साथ वन्य प्रदेश में, वैदिक यज्ञ के पश्चात् इस संस्था का प्रारम्भ हुआ। महात्मा मुंशीराम ने अपने दोनों पुत्रों को गुरुकुल के अर्पण करने के साथ अपना निजी पुस्तकालय और जालन्धर की लगभग 30000 रुपये की विशाल कोठी, 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र और प्रैस - सर्वस्व गुरुकुल के समर्पण कर दिया। यद्यपि 'अपनी सम्पत्ति के रूप में उनके पास कुछ नहीं था। दूसरी ओर उन पर 36000 रुपये का ऋण था, फिर भी गुरुकुल कोष से एक पैसा भी निर्वाहार्थ उन्होंने नहीं लिया। महात्मा मुंशीराम 17 वर्ष तक गुरुकुल के आचार्य और मुख्याधिष्ठाता रहे। ऋषिकल्प इस महापुरुष के तपःपूत और त्यागनिष्ठ जीवन की यश सुरभि देश-विदेश में चारों ओर अनायास ही फैल गयी।

17. गुरुकुल का पवित्र जीवन :

गुरुकुल में उस समय लगभग 300 ब्रह्मचारी थे और भारत के लगभग सब प्रान्तों के अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका के भी कुछ ब्रह्मचारी थे। प्रायः प्रतिवर्ष गुरुकुल में प्रविष्ट होने के लिए इतने बालक अपने माता-पिता के साथ आते कि स्थान की कमी के कारण उन्हें सखेद वापस करना पड़ता था। प्रत्येक विद्यार्थी बालक को विशेष जाँच के पश्चात् ही लिया जाता था। कहाँ तो कुछ लोग ताने के साथ कहते थे कि जंगल में तपस्या करने के लिए कौन माता-पिता अपने बच्चों को भेजेंगे और कहाँ, लगभग 5-6 वर्ष में ही, जनता में इस गुरुकुल के लिए इतना आकर्षण पैदा हो गया कि संस्था के संचालकों के लिए प्रवेश के कड़े नियम बनाने पड़े। ऐसा क्यों? इसका एकमात्र कारण आदर्श वानप्रस्थी के रूप में श्रेयमार्ग के पथिक महात्मा मुंशीराम का निजी, सार्वजनिक सात्विक तथा राष्ट्रप्रेम-पूर्ण जीवन था।

18. गुरुकुल की ख्याति : विदेशी सरकार की घबराहट :–

परन्तु गुरुकुल की यह ख्याति विदेशी सरकार की आँखों में खटकने लगी। गोरी नौकरशाही और ईसाई पादरियों ने गुरुकुल को राजद्रोही संस्था बताते हुए कपोल-कल्पित अफवाहें उड़ानी आरम्भ की। किसी ने कहा, गुरुकुल में बम बनाने सिखाये जाते हैं, वहाँ के ब्रह्मचारी तेज दौड़ते हुए घोड़े पर बैठ, दायें हाथ में लगाम संभाले, बांयें हाथ से आकाश में उड़ते पक्षी को निशाना बना गोली से भूमि पर गिरा देते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल अंग्रेज़ी सरकार के लिए हौआ बन गया और विदेशी अंग्रेज़ों तक इसकी चर्चा होने लगी।

19. वायसराय और उत्तरप्रदेश के लेफ्टिनेंट गर्वनर गुरुकुल में :–

महात्मा मुंशीराम ने इस स्थिति में बड़ी दूरदर्शिता और बुद्धिमता से काम लिया। उन्हीं के प्रभाव से, उत्तर प्रदेश के लेफ्टि० गवर्नर सर जेम्स मेस्टन दो बार गुरुकुल आये और अत्यन्त प्रभावित हुए। इसके बाद, भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड चेमस्फोर्ड दलबल सहित इस संस्था को स्वयं देखने आये। इनके अतिरिक्त दिल्ली स्टोफेन्स कॉलेज के प्रोफेसर श्री सी०एफ० एन्ड्रूज तो कई मास तक गुरुकुल में रहे और अंग्रेज़ी पढ़ाते रहे। उनके मित्र श्री पोलक, श्री पीपराजन आदि कई विदेशी महानुभाव आये। तत्कालीन गोरी नौकरशाही के कट्टर पोषक लखनऊ के दैनिक 'पायोनीयर' में इनके कई लेख गुरुकुल के संबंध में प्रकाशित हुए, जिससे इसाइयों का षड़यंत्र विफल हो गया।

20. अंग्रेज़ी मज़दूर दल के नेता रेमजे मैक्डानल्ड

1914 ई० में मजदूर दल के प्रमुख नेता और बाद में अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रधानमंत्री रेमजे मैक्डानल्ड भारत-यात्रा में गुरुकुल भी आये। यहाँ से वापस जाकर लन्दन के प्रमुख पत्र 'डेली क्रानिकल' में गुरुकुल और आर्यसमाज के सम्बन्ध में उन्होंने निम्नलिखित शब्द कहे–

सरकारी लोगों के लिए गुरुकुल एक पहेली है। अध्यापकों में एक भी अंग्रेज़ नहीं है। अंग्रेज़ी की पढ़ाई और उच्च शिक्षा के लिए पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त पाठ्य पुस्तकें यहाँ काम में नहीं लाई जाती, सरकारी विश्वविद्यालय की परीक्षा के लिये यहाँ से किसी भी विद्यार्थी को बाहर नहीं भेजा जाता और विद्यार्थियों को विद्यालय से अपनी उपाधियाँ दी जाती हैं। सचमुच यह सरकार की अवज्ञा है। घबराये हुए सरकारी अधिकारियों के मुँह से इसके लिए पहली बात यही निकलेगी कि यह स्पष्ट राजद्रोह है। ..... जहाँ तक मुझे मालूम है कि गुरुकुल के संस्थापकों के अतिरिक्त और किसी ने उस असन्तोष को मूर्त्तरूप देते हुए शिक्षा-क्षेत्र में नया परीक्षण नहीं किया है।

21. महात्मा मुंशीराम : ईसामसीह की प्रतिमूर्ति :–

महात्मा मुंशीराम के प्रति इस राजनीतिज्ञ ने इसी प्रसंग में कितने अनूठे और भावपूर्ण निम्नलिखित शब्द लिखे हैं –

एक महान् भव्य और शानदार मूर्ति जिसे देखते ही उसके प्रति आदर का भाव उत्पन्न होता है, हमारे आगे हमसे मिलने के लिए बढ़ती है। आधुनिक चित्रकार ईसामसीह का चित्र बनाने के लिए उसे अपने सामने रख सकता है और मध्यकालीन चित्रकार उसे देखकर सेंट पीटर का चित्र बना सकता है यद्यपि उस मछियारे की अपेक्षा यह मूर्ति कहीं अधिक भव्य और प्रभावोत्पादक है।

विदेशी गोरी नौकरशाही का विरोध तो इन उपर्युक्त परिस्थितियों के परिणामस्वरूप बहुत कुछ कम हो गया यद्यपि उसकी दृष्टि में गुरुकुल सरकार-विरोधी संस्था तो बना ही रहा, क्योंकि गुरुकुल अपने प्रारम्भ काल से ही राष्ट्रीय आन्दोलनों में विशेष सहयोग देता रहा। परन्तु गुरुकुल का सर्वाधिक चुभने वाला विरोधी दल अपने ही कुछ आर्य पुरुष थे जो प्रतिनिधि सभा के अधिवेशनों और उसके बाहर भी सदा महात्मा जी पर आक्षेप और गुरुकुल का

विरोध करने पर तुले रहते थे। पर, यह नर-पुंगव इन सब तूफानों के बीच बिना घबराये, गुरुकुल की नौका को संभालकर खेता रहा।

20. आर्यसमाज पर सरकारी प्रकोप : महात्मा जी का नेतृत्व :–

1900 ई० से 1912 ई० तक का समय आर्यसमाज के लिए कड़ा परीक्षण काल था। अंग्रेज़ी सरकार की आर्यसमाज पर शनि दृष्टि बनी हुई थी। सरकार की दृष्टि में 'आर्यसमाजी' होना अपराध और राजद्रोह समझा जाने लगा था। कई जगह आर्यसमाजी सरकारी-कर्मचारियों को केवल 'आर्यसमाजी' होने के हेतु परेशान किया जाने लगा। गोरी नौकरशाही के इशारे पर अक्टूबर 1906 ई० में पटियाला रियासत में 84 आर्यसमाजियों को गिरफ्तार करके उन पर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया। रियासत की ओर से मुक़द्दमा लड़ने के लिए 1000 रुपये दैनिक फीस पर एक अंग्रेज़ बैरिस्टर नियुक्त किया गया। आर्य नेता के रूप में महात्मा मुंशीराम ने इस संकट-काल में बड़े साहस और धैर्य का परिचय दिया। आर्यसमाज की स्थिति को स्पष्ट करने और सरकार को आर्यसमाज के विरुद्ध अभियोगों की खुली जाँच करने के लिए महात्मा जी ने वाणी और लेखनी द्वारा कई चैलेंज दिये। पटियाला अभियोग में आप एक कुशल वकील और मूर्धन्य आर्य नेता के रूप में अभियुक्तों की पैरवी के लिए बिना किसी फीस के अदालत में मुक़द्दमा लड़ते रहे। रियासत ने अपना पक्ष निर्बल देख राजद्रोह का मुक़द्दमा तो उठा लिया परन्तु इन आर्यसमाजियों को राज्य से निर्वासित कर दिया।

कुछ समय बाद रियासत ने यह आदेश भी उठा लिया। इसी प्रकार जोधपुर में पुलिस ने समाज मन्दिर के ऊपर से 'ओ३म्' का झंडा उतार लिया था। इस अग्नि परीक्षा में आर्यसमाज की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए महात्मा मुंशीराम जी ने आचार्य रामदेव जी की सहायता से 'आर्यसमाज एंड इट्स डिस्ट्रैक्टर्स' पुस्तक अंग्रेज़ी में लिखी जिसने आर्यसमाज के स्वरूप को स्पष्ट करने में प्रशंसनीय कार्य किया। धौलपुर रियासत में आर्य समाज मन्दिर का एक भाग

गिरा कर राज्य की ओर से आम लोगों के लिए शौचालय बनाये जाने लगे। स्थानीय आर्य जनता के विरोध की राज्य ने परवाह नहीं की। स्वामी श्रद्धानंद जी ने वहाँ जाकर जब सत्याग्रह की घोषणा कर दी तो राज्य को झुकना पड़ा।

23. गुरुकुल सदा राष्ट्र-सेवक के रूप में :–

महात्मा मुंशीराम अपने आचार्य महर्षि दयानंद की भाँति कट्टर देश और राष्ट्रभक्त थे। इसी का यह परिणाम था कि गुरुकुल सदा राष्ट्र सेवा में अग्रगण्य रहा। जिस समय गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में गोरे शासकों द्वारा भारतीयों के साथ पक्षपातपूर्ण और दुर्व्यवहार के विरुद्ध सत्याग्रह किया, उस समय सब ब्रह्मचारियों ने आचार्य जी के नेतृत्व में एक मास तक एक समय भोजन करके बची राशि और पौष-माघ की कड़ी सर्दी में हरिद्वार के सप्त सरोवर पर बन रहे दूधिया बाँध पर दो मास तक पत्थर ढोने और तोड़ने की मजदूरी कर संगृहित राशि लगभग 2000 रुपये तत्कालीन भारतीय नेता महामान्य गोखले द्वारा गांधी जी के पास दक्षिण अफ्रीका भेजी थी। इस राशि को प्राप्त कर गोखले भी हर्ष से पुलकित हो अपनी कुर्सी से उछल साश्रुनयनों से बोले थे–

जिस देश में ऐसे आचार्य और ऐसे तपस्वी शिष्य हैं, उसका भविष्य सदा उज्ज्वल रहेगा।

गाँधी जी तो इस राशि को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और तभी से महात्मा जी के साथ उनकी घनिष्ठता बढ़ गई थी। इससे पूर्व हैदराबाद, उड़ीसा, राजस्थान में पड़े भयंकर अकाल-संकटों में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने भोजन में कटौती कर धन भेजा था। 1920 ई० में गढ़वाल में पड़े भयंकर दुर्भिक्ष में तो आचार्य श्री स्वयं ब्रह्मचारियों के साथ सहायता कार्य के लिए गढ़वाल गये थे। गढ़वाल प्रदेश गुरुकुल भूमि के समीप ही था। वस्तुतः स्वामी जी 'श्रमदान' आन्दोलन के प्रथम प्रणेता कहे जा सकते हैं। विनोबा जी तो बहुत बाद में आये।

24. महात्मा जी - छात्रों के माता-पिता :–

महात्मा जी के आचार्य रहते गुरुकुल में सब ब्रह्मचारियों के साथ सम्पन्न व निर्धन परिवारों के बिना भेदभाव के सर्वथा एक सदृश भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि का व्यवहार होता था। सब ब्रह्मचारियों में आपस में बड़ा प्रेम था। अंग्रेज़ी सरकार ने कई बार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से गुरुकुल को सहायता देने का प्रस्ताव किया। परन्तु आपाद-मस्तक देशभक्ति और महर्षि के सजग अनुयायी महात्मा मुंशीराम सदा इस प्रस्ताव को ठुकराते रहे। वे जानते थे कि विदेशी सरकार से प्राप्त एक पैसा भी गुरुकुल की स्वतंत्र और स्वच्छंद आत्मा के लिए विष-तुल्य घातक होगा।

25. हिन्दी प्रेम :–

महात्मा मुंशीराम अनन्य हिन्दी भक्त थे। अपने साप्ताहिक और लाभ पर चल रहे उर्दू 'सद्धर्मप्रचारक' को उन्होंने रातों रात हिन्दी में कर दिया और वर्षों तक घाटा सहकर चलाया। संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के बाद गुरुकुल से 'श्रद्धा' साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया। उर्दू के गढ़ दिल्ली से 'अर्जुन' नामक हिन्दी में पहला दैनिक जारी किया। महात्मा जी ने अपने जीवन में कई दर्जन हिन्दी पुस्तकें लिखीं – ''कल्याण मार्ग का पथिक'', ''मुक्ति सोपान (3 भाग)'' आदि। उनकी हिन्दी बड़ी शुद्ध और टकसाली होती थी। उन्हीं की प्रेरणा से गुरुकुल से हिन्दी में कई वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित हुई।

26. स्वामी श्रद्धानंद और शास्त्रार्थ :–

जिस समय मुंशीराम जालंधर को अपनी सामाजिक प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाकर आर्य समाज का प्रचार कर रहे थे, उस समय उन्हें अनेक बार विपक्षी विद्वानों से शास्त्रार्थ संग्राम में भी उतरना पड़ा। उन दिनों एक कश्मीरी पंडित गोपीनाथ लाहौर से 'अखबारे आम' नामक पत्र निकाल कर आर्य समाज और महर्षि दयानंद जी को गालियां देता था। वह अपने व्याख्यानों में आर्य समाज को शास्त्रार्थ

के लिए भी ललकारता। उन दिनों मुंशीराम जी आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान थे। उन्होंने पंडित गोपीनाथ के शास्त्रार्थ के आह्वान को स्वीकार कर लिया। 1898 ई० में लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर शास्त्रार्थ हुआ। आर्य समाज के मुख्य प्रवक्ता महात्मा मुंशीराम जी थे। शास्त्रार्थ में लगभग 10000 व्यक्ति उपस्थित रहते थे। एक मास पश्चात् आर्य समाज जालंधर के उत्सव पर दोनों महारथियों का पुनः शास्त्रार्थ हुआ। गोपीनाथ यद्यपि सनातन धर्म का पक्ष भलीभाँति सिद्ध नहीं कर सके, तथापि वह अपने पक्ष में आर्य समाज के ऊपर अपशब्दों की वर्षा करने में पीछे नहीं रहे। फलतः उन पर कोर्ट में मुक़द्दमा चलाया गया और उन्हें सज़ा भी मिली। बदले की भावना से उन्होंने सद्धर्म प्रचारक के संपादक महात्मा मुंशीराम पर भी मुक़द्दमा चलाया परन्तु महात्मा मुंशीराम बरी हो गये।

27. महात्मा मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानंद :–

वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा से मुक्त हो लगभग 18 वर्ष तक गुरुकुल का संचालन कर और इसे योग्य उत्तराधिकारियों और संस्था की स्वामिनी सभी आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब को सौंपकर 18.4.1917 को महात्मा मुंशीराम जी ने वैदिक मर्यादा के अनुसार संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। महात्मा जी का सम्पूर्ण जीवन एक ही सूत्र में अनुस्यूत था और वह था 'श्रद्धा'। संन्यास आश्रम में प्रवेश के समय मायापुर (कनखल) वाटिका में उपिस्थत हज़ारों नर-नारियों के सम्मुख उन्होंने जो मार्मिक और अन्तस्तल-स्पर्शी भाषण दिया था, वह आज भी हमारे कानों में गूंज रहा है। उन्होंने कहा था –

मेरा सारा जीवन श्रद्धा पर आधारित रहा है, इसलिए मैं आप सब सज्जनों और देवियों के सम्मुख 'श्रद्धानंद' नाम धारण करता हूँ। श्रद्धापति भगवान् मुझे जीवन के इस नये क्षेत्र में सदा कर्तव्यपरायण बने रहने के लिए बल प्रदान करें।

इस समय महात्माजी आर्यसमाज की लगभग सभी मूर्धन्य संस्थाओं के शीर्षस्थ नेता थे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के संस्थापक और आजीवन इसके अध्यक्ष रहे। परोपकारिणी सभा के सदस्य, आर्यकुमार महासभा के प्रधान, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन भागलपुर-प्रधिवेशन के सभापति तथा 1925 ई० में हुई दयानंद जन्मशताब्दी के अध्यक्ष प्रमुख सूत्रधार आदि पदों पर थे।

28. गांधी जी जिन्हें बड़ा भाई कहते थे :–

स्वामी श्रद्धानंद के रूप में आपने जब देश का नेतृत्व संभाला, तब उसमें नवजीवन का संचार होने लगा। दक्षिण अफ्रीका से सत्याग्रह में सफलता प्राप्त कर गांधी जी भी भारत के राजनीतिक क्षितिज पर चमकने लगे थे। गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में गुरुकुल के समस्त ब्रह्मचारी और कार्यकर्ताओं ने अपने आचार्य महात्मा मुंशीराम जी के नेतृत्व में हरिद्वार में बंध रहे दूधिया बांध पर पौष माघ की कड़ी सर्दी के महीनों पत्थर तोड़ कर और एक समय का भोजन कर 15000 रुपये से अधिक श्री गोखले द्वारा सहायतार्थ भेजे थे। गांधी जी इससे अत्यन्त प्रभावित हुए थे। भारत में आकर वे सबसे पहले स्वामीजी के चरणों को स्पर्श करने के लिए गुरुकुल पहुँचे। गांधीजी स्वामी श्रद्धानंद जी को सदा अपना 'बड़ा भाई' कहते व मानते थे।

29. देश का राजनीतिक नेतृत्व :–

नौकरशाही के दमनकारी रौलट एक्ट के विरुद्ध जिस समय गांधीजी ने सत्याग्रह की घोषणा की उस समय स्वामी श्रद्धानंद जी का उन्हें पूरा सहयोग था। स्वामीजी पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'सत्याग्रह' के 'प्रतिज्ञापत्र' पर हस्ताक्षर किये थे। गांधीजी की घोषणा के अनुसार 30.2.1919 ई० को इस काले बिल के विरुद्ध सारे देश में हड़ताल होनी थी। गांधीजी स्वयं उसका संचालन करने के लिए दिल्ली आ रहे थे। दिल्ली से कुछ स्टेशन पहले, कोसीकलां एक छोटे

रेल-स्टेशन पर बम्बई से रेलगाड़ी पर आ रहे गांधीजी को पकड़ कर बम्बई वाली गाड़ी पर वापस भेज दिया गया। इससे सारे देश में विशेषतः दिल्ली और पंजाब में, विद्रोह की आग भड़क उठी। दिल्ली में गोली चली और एक सप्ताह तक पूर्ण हड़ताल रही। इस सारे आन्दोलन का नेतृत्व गांधीजी के नजरबंद हो जाने से स्वामी श्रद्धानंद जी के हाथ में था। उन दिनों दिल्ली में रामराज्य था। अदालतों में मुक़द्दमे जाने बंद हो गये थे और कसाइयों ने भी पशु-हत्या बंद कर दी थी। सब मुक़द्दमों का फैसला स्वामी श्रद्धानंद जी के नया बाज़ार के निवास-स्थान पर होता था। हिन्दू-मुस्लिम एकता पूर्ण रूप से थी।

30. अमृतसर-कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष :–

ओडवायर और डायर के नृशंस अत्याचारों से पीड़ित अमृतसर में, जलियांवाला बाग हत्याकांड के पश्चात्, संकटग्रस्त पंजाब की सुध लेने स्वामीजी ही सबसे पहले मैदान में आये। लाहौर पहुँचकर उन्होंने पंजाब सेवा समिति कायम की और पीड़ितों की सहायता प्रारम्भ की। स्वामी जी के आदेशानुसार पंजाब सेवा समिति को पंजाब में सेवा करने का सौभाग्य मिला था। जलियांवाला बाग़ के नृशंस और निर्मम हत्याकाण्ड के बारे में कांग्रेस को जांच कमेटी नियुक्त करने की इन्होंने ही प्रेरणा दी थी। 1919 ई० में कांग्रेस अधिवेशन अमृतसर में होना था परन्तु पंजाब के नेताओं के जेल में रहने और अन्य कार्य-कर्ताओं के निरुत्साहित होने से कोई दायित्व लेने को तैयार नहीं था। स्वामी श्रद्धानंद जी आगे आये और उनकी स्वागताध्यक्षता में ही अमृतसर में कांग्रेस का वह क्रांतिकारी अधिवेशन हुआ जिसने भारत के इतिहास को बिल्कुल नई दिशा दे दी। स्वामी जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कांग्रेस मंच से वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ हिन्दी में भाषण दिया और उसमें सर्वप्रथम उन्होंने ही दलितोद्धार की भयंकर समस्याओं की ओर देश का ध्यान आकृष्ट किया। गांधी जी ने लगभग 15 वर्ष बाद इस प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया।

31. सिखों के लिए जेल यात्रा :–

उन्हीं दिनों अमृतसर में सिखों का 'गुरु का बाग़' सत्याग्रह चल रहा था। स्वामी जी कितने अनन्य राष्ट्रवादी और असांप्रदायिक थे, इसका प्रमाण इसी से मिलता है कि इस सत्याग्रह में वे बीमार होते हुए और वृद्धावस्था में भी शामिल हुए। उन्हें 6 मास की जेल यात्रा करनी पड़ी। सचमुच यह अत्यंत दुःखजनक और विस्मयपूर्ण सत्य है कि आजन्म राष्ट्रीयता में ओत-प्रोत और देश की निर्बलताओं का पूर्णतः उन्मूलन करने में रातदिन तत्पर ऐसे महान् व्यक्ति को साम्प्रदायिक कैसे समझ लिया गया और राष्ट्रीय क्षेत्र से एकदम क्यों भुला दिया गया?

32. बेलगाँव–काँग्रेस में :–

गांधी जी की अध्यक्षता में बेलगाँव में हुए कांग्रेस अधिवेशन में स्वामी जी उनके विशेष निमंत्रण पर वहाँ शामिल हुए थे। गांधीजी ने अपने भाषण में गुरुकुल में यात्रियों की सुन्दर व्यवस्था को बड़ी प्रशंसा की थी। अगर स्वामी जी की हत्या न की जाती और वे बीमार न होते तो उनके जीवन का अन्तिम इतिहास कुछ भिन्न ही होता।

33. कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण नीति : स्वामी जी का विरोध :–

कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के विरोध में और इस सत्य का अनुभव कर कि भारत के बहुसंख्यक हिन्दू जब तक संगठित और उन्नत नहीं होते तब तक भारत विदेशी शासन से मुक्त नहीं हो सकता, और साथ ही यदि मुसलमानों को तबलीग का अधिकार है तो हिन्दुओं को शुद्धि का क्यों नहीं। श्री स्वामी जी महाराज ने कांग्रेस से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। स्वामीजी ने यह भी कहा था कि 'तिलक स्वराज-कोष' में एकत्र 1 करोड़ रुपयों में से कुछ अंश दलितों और अस्पृश्यों के हित में अलग रख दिया जाए। कांग्रेस ने इसे स्वीकार नहीं किया। श्री स्वामी जी ने 'दलितोद्धार सभा' स्थापित कर अपने ढंग से इस कार्य को प्रारम्भ कर दिया।

34. जामा मस्जिद से श्रद्धांजलि :–

स्वामी श्रद्धानंद जी ने जामा मस्जिद के मिम्बर (पवित्र वेदी) से

शहीदों को श्रद्धांजलि की थी यह वह अश्रुत, अपर्व और अद्‌भुत अवसर था जिसके लिये कहा जाता है – ''न भूतो न भविष्यति'' स्वामी श्रद्धानंद जी ने कहा था –

ओ३म् त्वं हि न पिता वसो त्वं माता

शतक्रतो बभूविथा अघा ते सुमन्मीमहे । ऋ० 8.98.11

हे प्रभो ! तू ही हमारा पिता है और तू ही हमारी माता है । हम तेरी प्रसन्नता के लिये ही प्रार्थना करते हैं ।

इस वेद मंत्र द्वारा अपना उपदेश आरम्भ कर ओ३म् शांति ! ओ३म् शांति ! ! ओ३म् शांति ! ! ! के साथ शहीदों के त्याग, बलिदान एवं समर्पण का भावभीनी शब्दों में स्मरण करते हुए हिन्दू मुसलमान को भारत की दो आँखें कहा था । इस दृश्य का चित्रण कवि नीरज ठाकुर ने कितने सुंदर शब्दों में किया है–

जामा मस्जिद के मिम्बर (पवित्र वेदी) पर खड़ा हुआ संन्यासी ।

मक्का और मदीना के संग जैसे मथुरा काशी । ।

हिन्दू, मुस्लिम इस भारत की हैं दो आँखें प्यारी ।

शीघ्र देश आज़ाद बने यह करलो अब तैयारी । ।

35. स्वामी श्रद्धानंद जी का महाप्रस्थान :–

जब दोपहर के समय पं० इन्द्र जी दर्शनों को गये तो स्वामी जी ने उन्हें पास बुलाकर बिठाया और जो थोड़ा सा रुपया बैंक में पड़ा हुआ था, उसके बँटवारे के संबंध में निर्देश करके अन्त में कहा-

इस शरीर का कुछ ठिकाना नहीं, मैं शायद ही उठूँ । तुम एक काम जरूर करना । मेरे कमरे में आर्य समाज के इतिहास की सामग्री पड़ी है, उसे संभाल लेना और समय निकाल कर इतिहास जरूर लिख डालना । एक बात और कहता हूँ । इतिहास के लिखने में मुझे माफ करना । मैंने बड़ी-बड़ी भूलें की हैं । तुम्हें तो मालूम कि मैं क्या करना चाहता था और मैं किधर पड़ गया ।

इतना कहते-कहते स्वामी जी का दिल भर आया और चुप हो गये । अधिक न बोल सके और आँखें बंद कर लीं । उन्हीं दिनों डा० सुखदेव जी ने हँसकर कहा–

स्वामी जी, आपकी तबीयत अच्छी हो रही है, थोड़े दिनों में आप उठ खड़े होंगे। दो दिन में आपको रोटी दे दूंगा और बैठने लगेंगे।

स्वामी जी ने उत्तर दिया, डॉक्टर जी, आप लोग तो ऐसा ही कहते हैं, परन्तु मेरा शरीर तो अब सेवा के योग्य नहीं रहा। इस रोगी शरीर से देश का कोई कल्याण न हो सकेगा। अब तो हृदय में एक ही इच्छा है कि दूसरा जन्म लेकर नये शरीर से जीवन के कार्य पूरा करूँ। शहादत से दो दिन पूर्व व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालु जी शर्मा स्वामी जी की मिजाजपर्सी को आये। स्वामी जी के लिए उठना कठिन था तो भी आधे उठ कर हाथ मिलाया और बातचीत होने लगी। व्याख्यानवाचस्पति जी ने मुस्करा कर कहा कि स्वामी जी, मुझ से मालवीय जी एक वर्ष बड़े हैं और आप उनसे एक वर्ष बड़े हैं। अभी हम लोगों को बहुत सा काम करना है। आप इतनी जल्दी मोक्ष की तैयारी क्यों करने लगे थे? अब तो आप राजी हो जायेंगे। स्वामी जी ने उत्तर दिया –

पंडित जी, इस कलियुग में मोक्ष की इच्छा नहीं रखता। मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि चोला बदल कर दूसरा शरीर धारण करूँ। अब इस शरीर से सेवा नहीं हो सकेगी। इच्छा है कि फिर भारतवर्ष में उत्पन्न हो कर देश की सेवा करूँ।

निधन से पहली सांयकाल को स्वामी जी के पुत्र देशबन्धु गुप्त दर्शनों को आए। उस समय स्वामी जी की धर्मपुत्री शान्तिदेवी भी वहीं थी। देशबन्धु जी ने पूछा कि डॉक्टर लोग कहते हैं कि आप की तबीयत अच्छी हो रही है, क्या आप को भी ऐसा अनुभव होता है? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि डॉक्टर लोग चाहे कुछ कहें परन्तु मुझे तो आत्मा का यही शब्द सुनाई देता है कि अब यह शरीर काम का नहीं रहा। मैं इस समय जाने के लिए बिल्कुल तैयार हूँ।

23 दिसम्बर की दोपहर को गोली लगने से कुछ घंटे पूर्व स्वामी चिदानन्द जी राजा सर रामपालसिंह का एक तार लेकर आए जिसमें स्वामी जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछा था। स्वामी चिदानंद जी ने

प्रश्न किया कि मैं क्या उत्तर दूँ? स्वामी जी ने लिखवा दिया। उत्तर की अंतिम पंक्तियाँ इस आशय की थीं कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण करके शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं।

इस प्रकार स्वामी जी चार-पांच दिन तक अनुभव करते रहे कि उन का अन्त समय समीप है। लोगों की छोटी दृष्टियाँ वहाँ न पहुँच सकीं, जहाँ तपस्वी की अन्तर्दृष्टि पहुँच चुकी थी। उन्हें बुलावा आ रहा था। वह उस समय के लिए तैयार थे। सब लोग अपनी छोटी बुद्धियों से यही सोचा करते थे कि स्वामी जी इतने आशावादी होते हुए भी इस समय निराशा की बातें क्यों कर रहे हैं?

पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति दोपहर के समय प्रतिदिन स्वामी जी के दर्शनों को जाया करते थे। उस दिन जब डेढ़ बजे के लगभग ऊपर गये जो स्वामी जी सो रहे थे। चारपाई के पास ही दरी पर धर्मसिंह सो रहा था, और रात की सेवा से थके स्नातक धर्मपाल जी पास के कमरे में सोये पड़े थे। घर में सब सोये पड़े थे। यह देखकर वे आश्चर्यचकित से हुए परन्तु यह समझ कर कि किसी को नींद से उठाना अच्छा नहीं, नीचे उतर गये और एक लड़के को जो स्वामी जी के पास कमरे में रहता था और ईसाई से आर्यसमाजी बना था ऊपर भेज दिया कि स्थान आरक्षित न रहे। दिल में यही सोचा होगा कि फिर शाम को आकर दर्शन करेंगे।

लगभग ढाई बजे डॉक्टर सुखदेव जी के अतिरिक्त कन्या गुरुकुल की आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठ, स्वामी जी के अनन्य भक्त लाला जमनादास तथा कई अन्य महानुभाव दर्शनों को आ बैठे और लगभग पौने चार बजे तक बैठे रहे। वह स्वामी जी के निवृत्त होने का समय था। स्वामी जी ने सब लोगों से कहा कि आप लोग अब जाइये और केवल सेवक धर्मसिंह रह जाए। सब लोग इशारा समझ गए और उठकर नीचे चले गए। धर्मसिंह ने आकर कमोड रख दी। स्वामी जी शौच गये और हाथ मुंह धो शुद्ध और सावधान होकर मसनद (बड़ा तकिया) के सहारे मानो बलिदान का अमृत पीने के

लिए तैयार होकर बैठ गये ।

धर्मसिंह कमोड को उठाकर पास की कोठरी में रख आया और हाथ धोने के लिए बाहर गया । इतने पर सीढ़ियों पर एक मुसलमान दिखाई दिया । स्वामी जी के पास डॉक्टर ने आना बंद कर दिया था । सेवक ने उसे जाकर रोक दिया । वह कहने लगा कि स्वामी जी के दर्शन करूँगा । नौकर रोकता रहा परन्तु स्वामी जी ने आवाज़ सुन ली और सेवक से कहा कौन है ? अन्दर आने दो । सेवक ने मुसलमान को अन्दर बुला लिया । अन्दर आकर उसने स्वामी जी से कहा–

स्वामी जी मैं आपसे इस्लाम से मुतल्लिक कुछ गुफ़्तगू करना चाहता हूँ ।

स्वामी जी ने कहा–

मैं भाई बीमार हूँ । तुम्हारी दुआ से राजी हो जाऊँगा तो बातचीत करूँगा ।

इस पर उसने पानी मांगा । स्वामी जी ने सेवक से कहा 'पानी पिला दो' । इस पर धर्मसिंह उस मुसलमान के साथ बाहर चला गया और पानी पिलाया । पानी पीकर वह मुसलमान फिर तेजी से कमरे के अन्दर आ गया । इसके विषय में आपको कुछ शेर सुनाना चाहता हूँ । जैसे हैदर इलाहाबादी लिखते हैं –

आगाह (होनहार) अपनी मौत से कोई बशर (नहीं) है ।
सामान सौ वर्ष का है पल की खबर नहीं ।

इसी प्रकार ज़ौक लिखते हैं –

लाई हयात (जीवन) आये, क़ज़ा (मौत) ले चली चले ।
अपनी खुशी न आये, न अपनी खुशी चले ।

हत्यारे ने अन्दर आते ही पिस्तौल निकाल कर स्वामी जी पर फायर किया । स्वामी जी मसनद के सहारे बैठे हुए थे । पहली गोली स्वामी जी के सीने में जा लगी । क्योंकि उसी समय स्वामी जी की आंखें बंद हो गई थी । हत्यारे ने दूसरी गोली फिर छोड़ी । दोनों गोलियाँ आँख झपकते चल गईं । इतने में धर्मसिंह सेवक ने लपक

कर हत्यारे को पकड़ने का यत्न किया। हत्यारे ने फिर स्वामी जी पर तीसरा फायर किया। यह देख धर्मसिंह ने जान की ममता छोड़ आगे से आकर क़ातिल के हाथ से पिस्तौल छीनने की चेष्टा की। हत्यारे ने एक फायर धर्मसिंह पर भी कर दिया। गोली धर्मसिंह की टांग में लगी। वह बेचारा गोली खा कर लड़खड़ा गया और क़ातिल भाग निकलता कि उसी समय स्वामी जी के प्राइवेट सेक्रेटरी धर्मपाल ने झपट कर हत्यारे के दोनों हाथ पकड़ लिये और अड़गा डाल कर उसे गिरा दिया। धर्मपाल जी ने बड़ी हिम्मत का काम किया कि रिवाल्वर के साथ उस हत्यारे को लगभग आध घण्टे तक दबाये रखा।

बेचारा धर्मसिंह उसी घायल अवस्था में लुढ़कता बाहर गया, और चारों ओर आवाज़ें दीं। इस पर स्वामी चिदानंद जी भागे हुए आये। थोड़ी देर में मास्टर रमण जी डा० सुखदेव जी, लाला बलराम तथा अन्य बहुत से लोग पहुँच गये। दुर्घटना की खबर शहर भर में हवा की तरह फैल गई। स्वामी जी के कमरे के सामने हज़ारों की भीड़ इकट्ठी हो गई। थोड़ी देर में डा० अन्सारी तथा डा० अब्दुर्रहमान आ गये। उनसे पूर्व ही डा० चमनलाल किकानी भी आकर स्वामी जी की परीक्षा कर चुके थे। डा० अन्सारी ने खूब अच्छी तरह परीक्षा करके सूचना दे दी कि स्वामी जी का निधन हो चुका है।

4 बजे गोली चली थी। लगभग साढ़े चार बजे सरदार चेतसिंह कुछ सिपाहियों के साथ मौके पर पहुँचे। उन्होंने पहला काम यह किया कि अपना रिवाल्वर मुल्जिम के सामने तान कर पिस्तौल बरामद की और धर्मपाल जी से उसे छुड़वा कर सिपाहियों के सुपुर्द किया। थोड़ी देर में सीनियर सुपरिटेण्डेंट पुलिस मि० आइड मार्गन तथा नजरुलहक भी आ पहुँचे और पुलिस की तहक़ीक़ात शुरू हो गई।

इस तपस्वी स्वामी श्रद्धानंद जी ने धर्म पर अपना शरीर बलि चढ़ा दिया। वह जैसा अन्त चाहते थे, परमात्मा ने वह उन्हें दे दिया। भाग्य का चक्र यह है कि एक मुसलमान डा० ने उन्हें मौत के मुंह से

बचाया था और दूसरे मुसलमान ने गोली मार कर मौत के घाट उतार दिया। परमात्मा की अद्भुत लीला ऐसे ही रूपों में विचित्र ढंग से अपने आपको प्रकट किया करती है। स्वामी श्रद्धानंद को, असगरी बेग़म की जिसको शुद्ध करके शांति देवी बनाकर अपनी धर्म पुत्री बनाया की श्रद्धांजलि सुनिए–

वैदिक धर्म का डंका स्वामी बजा गये हैं।
मुर्दा दिलों को स्वामी जिन्दा बना गये हैं।
तर्जे अमल हमारा हम को बता गये हैं।
कर्त्तव्य अपना पालन करना सिखा गये हैं।
सारी उम्र गुजारी थी खिदमते धर्म में।
सेवा यह आखरी भी स्वामी निभा गये हैं।
बाग़े-धर्म को सींचा अपने लहू से आखिर
कुर्बानियों का करना हमको सीखा गये हैं।
खुद हो गये अमर वो जाति में डाल दी जां।
वैदिक धर्म की खिदमत करना बता गये हैं।
हॉय वृथा न हरगिज जायेगा खून उनका।
वो जानशीन हमको अपना बना गये हैं।
हँस हँस के जान देना सीखेगे इस तरह से।
अपना लहू बहाकर हम को दिखा गये हैं।
इस्लाम के जुल्म की तांईद में मुसलमां।
स्वामी का खूं बहाकर मोहर लगा गये हैं।

एक हिन्दी कवि के शब्दों में –

श्रद्धा और आनंद की एक खान श्रद्धानंद थे।
धर्म में जो हो गये बलिदान वे श्रद्धानंद थे।
बिन्दुओं से रक्त की सींची थी वैदिक वाटिका।
महर्षि जी राम थे तो हनुमान श्रद्धानंद थे।
मन के बिखरे थे जो माला के पिरोया फिर उन्हें।
शुद्धि है जीवन तो इसमें जान श्रद्धानंद थे।।

पंडित लेखराम जी

4. पंडित लेखराम

संसार के महापुरुषों के जीवन में, परिस्थिति और पृष्ठभूमि के अनुसार जहाँ विभिन्न्ता पाई जाती है, वहाँ कुछ ऐसी विशेषताएँ भी हैं जो सबमें सामान्य रूप से उपलब्ध होती हैं । यह भी इतिहास का सत्य है कि ये विशेषताएँ जितनी उग्र और तीक्ष्ण मात्रा में किसी व्यक्ति में होंगी, उतना ही अधिक वह 'महापुरुष' कहलाने का अधिकारी बनेगा । इन विशिष्टताओं में सबसे प्रथम, सबसे मुख्य और मूर्धन्य दृढ़ संकल्प का होना है । व्यक्ति के संकल्पों में जितनी दृढ़ता और स्थिरता होगी, उतना ही शीघ्र सफलता की ओर वह अग्रसर हो सकेगा । इस दृढ़ता और स्थिरता को कभी-कभी पागलपन समझ लिया जाता है । वस्तुतः किसी लक्ष्य के प्रति यह पागलपन ही उसकी सिद्धि में सर्वोत्कृष्ट साधन है ।

1. जन्म, बचपन, शिक्षा : पुलिस में नौकरी :–

आर्य समाज के उज्जवल नक्षत्रों में पं० लेखराम इसी श्रेणी के व्यक्ति थे । उनकी जीवन-कथा, वस्तुतः अत्यन्त प्रेरणाप्रद है । इनका जन्म पश्चिम पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान में) के झेलम जिले के ग्राम सैदपुर स्थित एक ब्राह्मण परिवार में 8 चैत्र संवत् 1915 विक्रमी को हुआ था । इनके दादा महता नारायणसिंह सिख राज्यकाल में एक वीर योद्धा थे । इनके पिता तारासिंह महता भी सैनिक वृत्ति के थे । लेखराम ने कुल परम्परा से एक सैनिक सदृश निर्भयता, साहस और दृढ़ शारीरिक संगठन प्राप्त किया था । बाल्य काल से ही धार्मिक और भावुक प्रवृत्ति के थे और एकादशी आदि व्रतों का पालन करते थे । उर्दू-फारसी में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर अपने चाचा गंडाराम, इन्सपेक्टर पुलिस की सहायता से पेशावर में पुलिस में भर्ती हो गये । एक सिख सिपाही की संगति से धार्मिक संस्कार जाग गये और पक्के

कृष्ण-भक्त बन नियमित रूप से पूजा-पाठ करने लगे। लेखराम की धर्म-जिज्ञासा लगातार बढ़ती गई।

2. आर्यसमाज में प्रवेश : –

इन्हीं दिनों लुधियाना के मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकें पढ़ने से उन्हें स्वामी दयानंद और आर्यसमाज का परिचय मिला। यहाँ से प्रेरणा प्राप्त कर लेखराम ने स्वामी जी के ग्रंथ पढ़ने आरम्भ किये। परिणामतः विचारों में एकदम क्रांति आ गई। अब वे पक्के आर्यसमाजी बन गये। उन्होंने मुस्लिम बहुल नगर पेशावर में आर्यसमाज की स्थापना की और उत्साह के साथ उसे चलाया। उस समय इसके सदस्य चार-पाँच व्यक्ति ही थे।

3. ऋषि दर्शन के लिये अजमेर यात्रा :–

ऋषि दयानंद के ग्रंथों के अध्ययन के बाद लेखराम जी के मन में ब्रह्म-जीव की एकता के संबंध में कई शंकाएं उत्पन्न हुई। उस समय के कट्टर नवीन वेदान्ती थे। उन्होंने अजमेर जाकर ऋषि दर्शन कर अपनी शंकाओं के निवारण का निश्चय किया। एक मास का अवकाश ले मार्ग में लाहौर, अमृतसर, मेरठ की आर्यसमाजों में ठहरते हुए 17.5.1880 ई० को अजमेर पहुँच गये। यहीं ऋषि के प्रथम और अन्तिम दर्शनों ने लेखराम के सब संशय निवृत्त कर दिये। उन्होंने स्वामी जी से 10 प्रश्न किये जिनमें ब्रह्म-जीव की एकता का प्रश्न भी शामिल था। पंडित जी ने इस साक्षातकार का वर्णन करते हुए लिखा है –

इससे मुझे शांति हो गई है। अन्त में मुझे ऋषि ने आदेश दिया कि 25 से पूर्व विवाह न करना।

अब वैदिक धर्म पर लेखराम की आस्था चट्टान के सदृश दृढ़ हो गई। अजमेर से ज्योति प्राप्त कर ये धर्म प्रचार में जुट गये।

पेशावर से 'धर्मोपदेश' नामक मासिक उर्दू पत्र निकालना आरंभ किया।

4. पुलिस की नौकरी से त्यागपत्र :–

अब पंडित जी का स्वतंत्र आत्मा नौकरी के बंधनों से खिन्न रहने लगा। पुलिस में मुसलमानों की अधिकता थी। उनसे पंडित जी की बहस प्रायः चलती रहती। एक दिन एक मुस्लिम इन्सपेक्टर पुलिस से उनकी झपट हो गई। पंडित जी ने निर्भीकता से उसके प्रश्नों का उत्तर दिया। इससे चिढ़कर उसने इनका तबादला एक दूर स्थान में कर दिया और छः मास के लिए वेतन-स्तर में भी कमी कर दी। इस परिस्थिति ने उन्हें अपनी जीवन-दिशा बदलने के लिए विशेष बाध्य किया। दो मास का नोटिस देकर आपने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार 30.9.1884 ई० को उन्होंने सदा के लिए इस दासता से मुक्ति प्राप्त की। अब सार्जेण्ट लेखराम वैदिक धर्म के दीवाने प्रचारक पंडित लेखराम आर्य पथिक के रूप में कार्य-क्षेत्र में अवतरित हुए।

5. कादियान के मिर्जा से प्रबल टक्कर : –

पेशावर में रहते हुए पंडित जी को मिर्जा गुलाम अहमद की एक पुस्तक 'बुराहीने अहमदिया' मिली जिसमें मिर्जा ने अपनी पैग़म्बरी का दावा किया था। इस अहमदिया समुदाय का उद्‌गम-स्थान पंजाब के जिला गुरदासपुर के अन्तर्गत कादियाना कस्बा था। मिर्जा बड़ा चतुर व्यक्ति था। उसने अंग्रेज़ी सरकार के समर्थन की नीति अपना ली थी। इसलिए, वह सदा अंग्रेज़ों का कृपापात्र बना रहा। इसके विपरीत, आर्यसमाज, प्रारम्भ से ही, विदेशी शासन के विरुद्ध और कट्‌टर देशभक्त संस्था थी। अंग्रेज़ की नीति सदा ही आर्यसमाज के प्रति दमन की रही। धार्मिक दृष्टि से आर्यसमाज मिर्जा के पैग़म्बर होने का प्रबल विरोधी था। दोनों में

टक्कर होना स्वाभाविक था। मिर्जा ने एक विज्ञापन द्वारा घोषणा की यदि कोई उसके चमत्कारों को मिथ्या सिद्ध कर दे और कोई गैर मुस्लिम कादियाने में एक वर्ष रहकर उसके चमत्कारों का कायल न हो तो वह उस हिन्दू को 2400 रुपये जुर्माने के तौर पर देने को तैयार है। पंडित जी ने मिर्जा को पत्र लिखा-

मैं एक साल तक तुम्हारे पास रहकर तुम्हारे चमत्कारों की परीक्षा लेने को तैयार हूँ।

मिर्जा पंडित लेखराम की तर्क-शक्ति और निर्भयता की ख्याति सुन चुका था। वह पंडित जी को टालने के लिए पत्र लिखता रहा। परन्तु पंडित जी तो बुरे के घर तक पहुँचने वाले थे। वे स्वयं कादियाने पहुँच गये और मिर्जा को ललकारा। तब भी वह चमत्कार दिखाने को तैयार न हुआ। पंडित जी कई दिन तक कादियान में रहकर वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। परिणामस्वरूप वहाँ आर्यसमाज की स्थापना हो गई। पंडित जी ने अहमदिया मत के खण्डन में कई पुस्तकें लिखीं। 1887 ई० में वे आर्य गजट के सम्पादक बने। इस प्रकार पंडित जी वाणी और लेखनी द्वारा दिन-रात आर्यसमाज की सेवा में लगे रहते थे। वे कितने त्यागी थे, इसका प्रमाण यही है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक के रूप में उनका मासिक वेतन उस समय केवल 25 रुपये था।

एक बार पंडित लेखराम और स्वामी श्रद्धानंद जी की भेंट सनातन धर्म के उपदेशक पंडित दीनदयाल जी से हुई। पंडित लेखराम जी ने उन्हें कहा कि आप हमें कोसने में तो सदा लगे रहते हैं, परन्तु मुसलमानों और ईसाइयों को कुछ नहीं कहते जो आपकी जड़ें खोदने में लगे रहते हैं। इस पर पंडित शिवदयाल जी ने उत्तर दिया हमारी जड़ें कौन खोखली कर सकता है। एक बार एक मुसलमान युवक चीखकर बोला –

काफिरों को काटने वाली मुहम्मदी शमशीर को मत भूल ।

इस प्रकार पंडित लेखराम जी ने सिंहनाद किया–

मुझे बुज़दिल मुहम्मदी तलवार की धमकी देता है । मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा है । जानते नहीं हो? मैं जान हथेली पर लिए फिरता हूँ । सारे हाल में सन्नाटा छा गया ।

6. साहित्य सृजन :–

प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया कि महर्षि दयानंद का जीवन चरित लिखा जाए और यह काम किसी सुयोग्य व्यक्ति के हाथ सौंपा जाए । सभा की दृष्टि तत्काल पंडित जी पर पड़ी । वे अविलम्ब इस महान् कार्य के लिए कमर कसकर देश भर का दौरा करने के लिए उद्यत हो गये । इसी समय आपके नाम के साथ ' आर्यपथिक' विशेषण जुड़ गया । पंडित जी ने दो वर्ष तक ऋषि से सम्बद्ध सब स्थानों पर जाकर खूब छानबीन कर, प्रचुर सामग्री तैयार की और ऋषि जीवन लिख तैयार कर दिया । आज तक ऋषि-जीवन पर जितने ग्रंथ निकले हैं, लगभग सब पंडित जी द्वारा लिखित ऋषि जीवन पर आधारित हैं ।

इसके अतिरिक्त 39 वर्ष की अल्पायु में उनका अचानक क़त्ल हो गया फिर भी उन्होंने लगभग 13 वर्ष तक वैदिक धर्म का प्रचार किया और 33 ग्रंथों की रचना की जैसे–

(1) कृष्ण का जीवन चरित्र (2) स्त्री शिक्षा (3) तारिख-ए-दुनियाँ (सृष्टि का इतिहास) (4) मुर्दा अवश्य जलाना चाहिए (5) आर्य हिन्दू और नमस्ते की खोज (6) पतितोद्धार (7) साँच को आँच नहीं (8) सत्य धर्म का संदेश, (9) सत्य सिद्धान्त (10) आर्य समाज की शिक्षा (11) सदाकते ऋग्वेद आदि ।

इन विस्तृत यात्राओं के बावजूद उन्होंने विभिन्न स्थानों पर

व्याख्यान करने में तनिक भी विराम नहीं किया। अपनी अल्प आयु में आर्य पथिक ने जितने व्याख्यान दिये, जितने पुस्तक और लेख लिखे, उन्हें देख बरबस यही कहना पड़ता है कि उनके जीवन का प्रत्येक क्षण आर्यसमाज और महर्षि दयानंद के चरणों में अर्पित था। पंडित जी उर्दू-फारसी के तो विद्वान् थे ही, परन्तु अपनी अनथक लगन और विद्या-प्रेम से उन्होंने संस्कृत और अंग्रेज़ी पर भी अच्छा अधिकार कर लिया था।

7. पंडित लेखराम और शास्त्रार्थ :–

पंडित लेखराम जी ने अपने जीवनकाल में अनेक शास्त्रार्थ किये। आपने पौराणिक पंडितों, पादरियों और मौलवियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया। जैसे 12.12.1895 ई० को रोपड़ में मूर्तिपूजा पर पौराणिकों से शास्त्रार्थ किया ओर इसी प्रकार 27.2.1896 ई० को डेरागानी खाँ में एक पादरी से शास्त्रार्थ किया और विजय श्री प्राप्त की।

8. व्यक्तित्व और स्वभाव :–

आर्य पथिक का व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक था। सिर पर पेशावरी साफा, शरीर पर बंद गले का कोट और नीचे पंजाबी ढंग का पाजामा - यह उनकी सादगी पोशाक थी। परन्तु उनके स्वस्थ, कद्दावर व्यायाम और ब्रह्मचर्य पालन से गठे शरीर, कीर्तिमान मुख, देदीप्यमान नेत्र युगल, सिंह सदृश ओजस्वी और गम्भीर वाणी - ये सब उनके असाधारण और विशिष्ट व्यक्तित्व का, अनायास ही परिचय देते थे। स्वभाव से पंडित जी सरल, निश्छल और स्पष्टवक्ता थे। चापलूसी, खुशामद और आजकल का आडम्बरपूर्ण शिष्टाचार उन्हें छू तक नहीं गया था। उनके निष्कपट और निर्भय स्वभाव के कई मनोरंजक उदाहरण हैं। एक बार उन्होंने प्रतिनिधि सभा के प्रधान महात्मा मुंशीराम को निडर हो उनकी त्रुटि बतलाने में तनिक

भी संकोच नहीं किया था। परन्तु इनका हृदय नवनीत की तरह कोमल भी था। आप के जीवन के अनेक प्रेरक प्रसंग सोती हुई आर्य जाति की रगो में उष्ण रक्त धारा को प्रवाहित करने में सक्षम है।

9. मुस्लिम घातक शुद्धि के बहाने पंडित जी के घर में :–

पंडित जी को कई स्थानों से उनके शुभ-चिन्तक सचेत कर रहे थे कि मुसलमान उनकी हत्या की कोशिश कर रहे हैं, परन्तु दृढ़ ईश्वर-विश्वासी आर्यपथिक ने कभी इस चेतावनी को गम्भीरता से नहीं लिया। फरवरी 1897 ई० के मध्य एक गठे बदन का नाटा, काले रंग भयानक प्रकृति का व्यक्ति पंडित जी का पता पूछता-पूछता उनके पास आया और बोला–

वह पहले हिन्दू था, दो वर्ष हुए मुसलमान हो गया है, अब वह पुनः हिन्दू होना चाहता है।

उसने अपने को बंगाली बताया, परन्तु वह पटना का बूचड़ था। सरलचित्त पंडित जी ने कहा–

वे अवश्य उसे शुद्ध करेंगे।

वह पंडित जी के साथ छायावत रहने लगा। कई आर्य भाइयों ने पंडित जी को सावधान भी किया कि यह व्यक्ति संदिग्ध प्रतीत होता है, परन्तु वे उसे शुद्ध करने पर तुले हुए थे और अपने साथ घर पर ही रखते थे।

10. गुप्त हत्यारा लगातार साथ रहता :–

1.3.1897 ई० से 6.3.1897 ई० तक पंडित जी मुलतान आर्यसमाज में व्याख्यान देकर दोपहर को लाहौर पहुँचे। प्रतिनिधि सभा के कार्यालय में गये। यह व्यक्ति भी पूरे शरीर पर कम्बल ओड़े वहाँ पहुँचा। कुछ कांप रहा था। पंडित जी के पूछने पर उसने कहा, ''ज्वर है और सिर-दर्द भी है।'' इलाज के लिए भी पंडित जी उसे

डॉक्टर के पास ले गये और दवाई ली। वस्तुतः यह घातक कम्बल ओढ़े भीतर छुरा छिपाये था, परन्तु पंडित जी ने उसका कम्बल उतरवाने की कभी इच्छा ही नहीं की। डॉक्टर की दूकान से वे एक बजाज की दूकान पर गये और वहाँ से माता जी के लिए कपड़े का एक थान ले घर वापस आये। खुले बरामदे में चारपाई पर बैठकर महर्षि दयानंद का जीवन-चरित्र लेखन संबंधी काम करने लगे। बायीं ओर कुर्सी पर वह हत्यारा बैठ गया।

11. ऋषि की मृत्यु का वर्णन लिखते स्वयं छूरे के शिकार :–

शाम के छः बज गये। माताजी ने रसोईघर से कहा "पुत्र लेखराम, तेल नहीं आया।" आर्य पथिक उस समय ऋषि दयानंद की मृत्यु का अंतिम दृश्य लिख रहे थे। लिखना बंद कर दिया। चारपाई से नीचे उतरे। अँगड़ाई लेते हुए बोले, 'ओफ भूल गया।" घातक तो कई दिन से इसी मौके की प्रतीक्षा में था। अँगड़ाई लेते हुए सारा सीना सामने आ गया था। घातक ने सधे हुए हाथ से छुरा आर्य पथिक के पेट में घुसेड़ दिया, खून की धाराएँ बहने लगीं और अंतड़ियाँ बाहर आ गई। पंडित जी ने उसका हाथ पकड़ा। छुरे का वार कर वह सीढ़ियों की ओर भागा। घातक के हाथ से उन्होंने छुरा छीन लिया, परन्तु उसके दो हाथ और पंडित जी का एक हाथ और रक्त की धाराएँ। माता और पत्नी दोनों बाहर आ गई और घातक को पकड़ लिया। उसने पास ही पड़े एक बेलन से माता जी के सिर पर दो तीन वार किये जिससे वे तत्काल बेहोश हो भूमि पर गिर पड़ी। घातक सीढ़ियों से नीचे उतर कहीं गुम हो गया।

12. सारे नगर में हाहाकार :–

अचानक कुछ क्षण बाद ही वयोवृद्ध आर्य लाला जीवनदास जी पंडित जी से मिलने आये तो यह दृश्य देख हक्का-बक्का रह गये। शोर मच गया और लोग इकट्ठे हो गये। परन्तु इस आर्य

केसरी के मुख पर कोई मलिनता न थी । पूछने पर वीर स्वर में बोले, ''वही दुष्ट जो शुद्ध होने आया था, मार गया ।'' डॉक्टर को बुलाने के लिए कहा गया । तत्काल चारपाई पर लिटा अस्पताल की ओर ले चले । डॉक्टर पैरी सिविल सर्जन, करीब दो घंटे बाद आये । छुरे के हमलों से सब आँत क्षत-विक्षत हो गई थीं और अजस्र रक्त-धाराएँ बह रही थीं । सिविल सर्जन हैरान था कि ऐसा व्यक्ति कैसे जीवित रह सकता है, यह कोई अद्‌भुत व्यक्ति ही है ।

13. महाप्राण :–

उधर, आर्य पथिक रात के 1.30 बजे तक सर्वथा सचेत थे, केवल प्रभु का नाम और वेद मंत्र जिह्‌वा पर थे, न घर की, न पत्नी की चिन्ता, न घातक पर आक्रोश और न मृत्यु का भय । यदि चिन्ता थी तो आर्यसमाज की, और ध्यान था तो महर्षि दयानन्द के उपकारों का । लगभग 2 बजे रात आर्य पथिक का जीवन-दीप टिमटिमाने लगा । उनके अन्तिम शब्द थे –

आर्य समाज से तहरीर (लेखन) और तकरीर (भाषण) का काम बंद नहीं होना चाहिये ।

दो बार सब को 'नमस्ते' करने के लिए हाथ हिलाने का प्रयास किया और 5 मिनट में ही अमर निद्रा में सो गये ।

14. शहीद आर्य पथिक का शानदार जलूस :–

पौ फटते ही आर्य पथिक की वीर गति का दुःखद समाचार बिजली की भाँति सारे लाहौर नगर में फैल गया । हिन्दू, सिख, जैन, ईसाई और समझदार मुसलमान भी सभी को सुन गहरा धक्का लगा । हज़ारों की संख्या में नागरिक -बिना धर्म, जाति और बिरादरी के भेदभाव के अस्पताल के सामने इस आर्य वीर के अन्तिम दर्शन करने लिए एकत्र होने लगे । 10 बजे प्रातः अर्थी उठाई गई और सीधी

लाहौर के मुख्य बाज़ार अनारकली में आ पहुँची। 20,000 से अधिक शोकाकुल जनता साथ थी। माता और पत्नी के विलाप से समस्त नर-नारियों के नेत्रों से अश्रुधाराएँ सतत् प्रवाहित हो रही थीं। प्रत्येक नर-नारी यह समझता था कि जैसे उसका कोई अपना प्रियतम व्यक्ति आज विदा हो रहा है। श्मशान-भूमि तक पहुँचते जनता की संख्या 30,000 तक हो गई थी।

वस्तुतः यह कहना तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी कि पंडित लेखक असंख्य लोगों के जीवन निर्माता, आर्यप्रचारक धुन के धनी, शुद्धि अभियान के प्रणेता, अंधविश्वास एवं पाखण्ड के समूल नाशक, तपस्वी जीवन के धनी एक सफल लेखक एवं प्रचारक थे। उन्हीं का नाम आर्य समाज के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। डॉ. इकबाल ने पं. लेख राम के विषय में सत्य ही लिखा है–

हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी (ज्योतिविहीनता) पर रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर (पारखी) पैदा।।

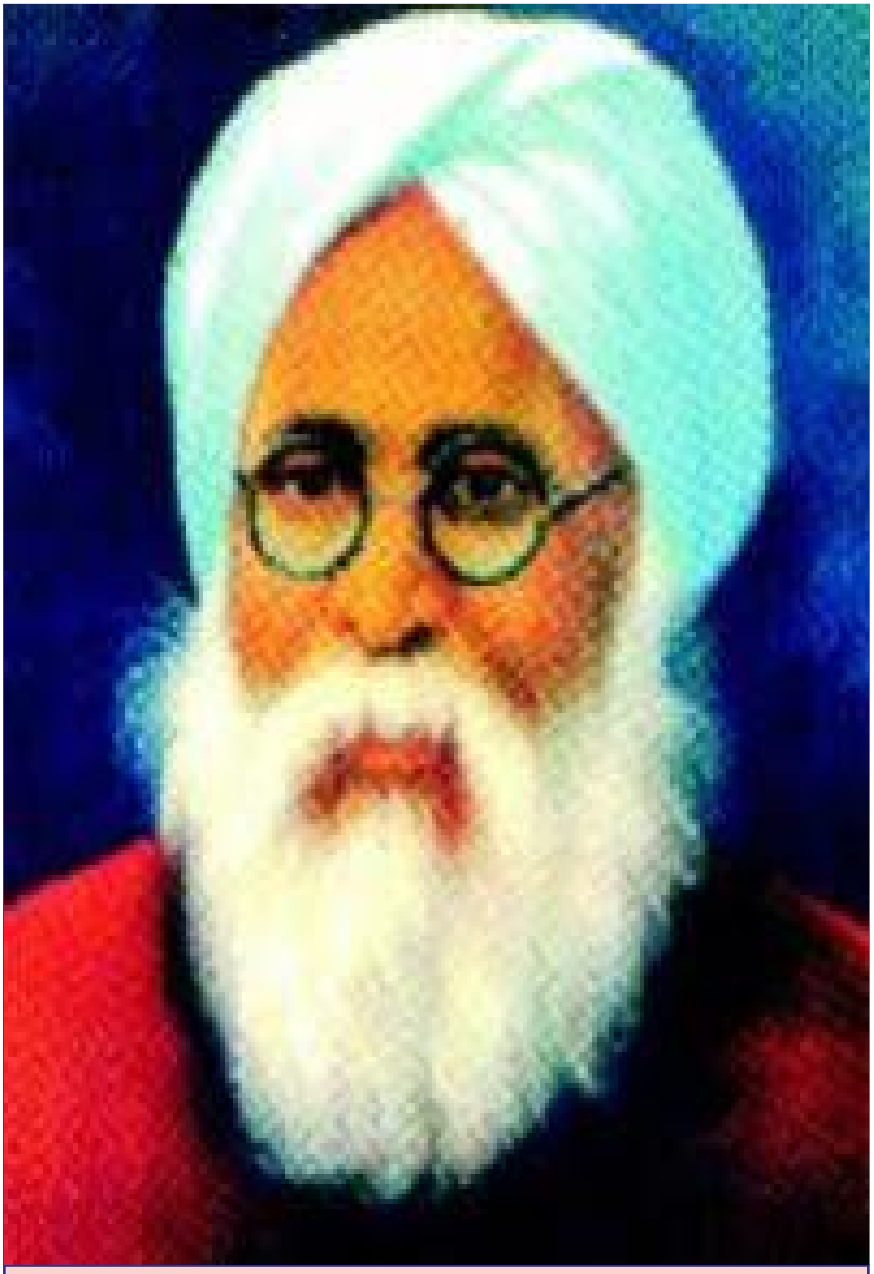

महात्मा हंसराज जी

5. महात्मा हंसराज

जीवन उन्हीं का धन्य है जो जीते हैं सबके लिए ।
धिक्कार है उनके लिए जीते हैं जो अपने लिए ।
जन्म होता है सुजन का विश्व के उद्धार को ।
विश्व सेवा, विश्व मंगल, विश्व के उपकार को ।

1. जन्म, बचपन शिक्षा :–

पंजाब के होशियारपुर जिले के अन्तर्गत बजवाड़ा ग्राम के लाला चुन्नीलाल और माता हरदेवी के पुत्ररत्न के रूप में हंसराज का जन्म 19.4.1864 ई० में हुआ । इनके बड़े भाई का नाम मुल्कराज था । यह परिवार आर्थिक दृष्टि से अवश्य निर्धन था, परन्तु परिश्रम और स्वात्माभिमान से अतिशय सम्पन्न था । हंसराज ने ये दोनों गुण विरासत में प्राप्त किये । शिक्षा का प्रारम्भ गांव से लगभग 3-4 मील दूर एक प्राइमरी स्कूल से हुआ । घर में कितनी निर्धनता थी, इसका अनुमान इसी एक तथ्य से लगाया जा सकता है कि बालक को नंगे पैर स्कूल आना-जाना पड़ता । ग्रीष्म ऋतु में नंगे पैरों के नीचे तपती भूमि और सिर पर आग बरसाया सूर्य - परन्तु यह तपस्वी बालक प्रसन्न्ता से कष्ट सहन करता, मेहनत से पढ़ाई में संलग्न रहता । स्कूल से वापस आते समय पैरों को गर्म रेत से बचाने के लिए यह बुद्धिमान बालक अपनी तख्ती को जमीन पर रखता और उस पर पैर रख कुछ कदम चलता । इस प्रकार उसने तेज धूप में इस मार्ग पर प्रतिदिन चलने का उपाय अपनी सूझ-बूझ से निकाल लिया था ।

उस समय गांवों के अधिकांश लोग अनपढ़ ही होते थे । हंसराज उनके पत्र लिख देता अथवा बाहर से आये उनके पत्र पढ़कर सुना देता । माता डाँटती कि ''तू अपनी पढ़ाई करेगा अथवा दूसरों के पत्र ही लिखता-पढ़ता रहेगा ।'' उदारचित हंसराज माता को यही उत्तर देता कि ''जितना कुछ मैंने पढ़ा है, अगर वह दूसरों के काम नहीं आता तो किस काम का ?

2. पिता की मृत्यु :

हंसराज अभी 12 वर्ष के ही थे कि पिता की मृत्यु हो गई। बचपन में ही पिता ने बालक की सगाई और अपनी मृत्यु से पूर्व बालक के विवाह की तिथि निश्चित् कर दी थी। इसलिए पिता की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् ही हंसराज का विवाह हो गया। उनके 5 बच्चे थे - 1. बलराज, 2. योधराज, 3. रत्नदेवी, 4. चन्ना देवी, 5. धर्मदेवी।

महर्षि के दर्शन :–

लाहौर के रंगमहल मिशन हाई स्कूल से मैट्रिक पास करने के पश्चात्, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए हंसराज अपने बड़े भाई मुल्कराज के पास जो उस समय लाहौर में नौकरी करते थे - चले गये। अत्यन्त विपरीत अवस्थाओं में संघर्ष करते हुए इस किशोर ने बी०ए० पास किया। जब यह लाहौर में पढ़ते थे, तब 1877 ई० में महर्षि दयानंद का वहाँ आगमन हुआ। हंसराज महर्षि के दर्शन से अत्यंत प्रभावित हुए। उनके उपदेशों का युवक के हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ा। मुनिवर पं० गुरुदत्त, लाला लाजपतराय, राजा नरेन्द्रनाथ, द्वारकादास आदि इनके सहपाठी थे। ऋषि-दर्शन से हंसराज के हृदय में इस महापुरुष और उसके मिशन आर्यसमाज के प्रति सेवा और समर्पण की उत्कट भावना का प्रादुर्भाव हो गया। अगर हंसराज चाहते तो ऊँची सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकते थे। जैसा कि इनके सहाध्यायियों में से कइयों ने अपने जीवन में उच्च पद प्राप्त किये। परन्तु यह युवक तो विलक्षण धातु का बना था। इसने अपने आचार्यश्री से सेवा और तपस्या की शिक्षा पायी थी, भौतिक सुख-ऐश्वर्य के लिए तनिक भी आकर्षण नहीं था।

3. डी०ए०वी० संस्था को अवैतनिक जीवन अर्पण :–

30.10.1883 ई० दीपावली के दिन महर्षि दयानंद जी का अजमेर में निधन हो गया। पंजाब के आर्य पुरुषों ने महर्षि दयानंद

जी की स्मृति में लाहौर में 'दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज' स्थापित करने का निश्चय किया क्योंकि उस समय सब शिक्षण संस्थाएं सरकारी थीं अथवा ईसाइयों द्वारा संचालित थीं। गैर-सरकारी और सर्वथा भारतीय शिक्षण संस्था कोई नहीं थी। ऐसी संस्था खोलने का निश्चय तो हो गया, परन्तु कोई योग्य व्यक्ति न मिलने से 4-5 वर्ष तक निश्चय काग़ज़ों पर ही रहा। आर्य नेता बहुत निराश हो रहे थे। हंसराज उस समय बी०ए० कर चुके थे और ऋषि के चरणों में अपना जीवन निष्काम भाव से, समर्पण करने को दृढ़संकल्प थे। उसका निश्चय था कि मैं संस्था से बिना कुछ वेतन लिये, आजन्म निःशुल्क सेवा करूँगा।

4. बड़े भाई की आजन्म उदारता :–

परन्तु, गृहस्थ की गाड़ी कैसे चलेगी, यह भारी समस्या हंसराज के सम्मुख मुँह खोले खड़ी थी। उनके बड़े भाई मुल्कराज लाहौर में ही नौकरी करते थे। हंसराज अपनी समस्या लेकर उनके पास गये। उन्हें उस समय 30 रुपये मासिक वेतन मिलता था। बड़े भाई भी उदार सेवा-भावना और उदार चित्त के थे। उन्होंने कहा–

अपने वेतन का आधा भाग मैं तुम्हें आजीवन देता रहूँगा। तुम अवश्य अपनी पवित्र निष्काम सेवा-भावना को कार्यान्वित करो।

हंसराज की समस्या इस दैवी प्रेरणा से हल हो गयी। लाला मुल्कराज ने आजीवन इस प्रण का निष्ठा के साथ पालन किया।

5. डी०ए०वी० स्कूल के मुख्याध्यापक, कॉलेज के आचार्य :–

हंसराज ने जब अपनी सेवाएँ इस प्रकार बिना वेतन के समर्पित की तब समस्त आर्य जगत् में हर्ष का संचार हो गया। 1.6.1886 ई० में डी०ए०वी० स्कूल स्थापित किया गया जिसके मुख्याध्यापक हंसराज जी थे। यही स्कूल 1911 ई० में एक अद्वितीय कॉलेज तक उन्नति कर गया। अब इसके प्रथम आचार्य हंसराज जी हुए। जनता ने अब आपको महात्मा हंसराज नाम से सुशोभित किया। महात्माजी 25 वर्ष तक कॉलेज से बिना किसी

प्रकार का वेतन लिये इस पद पर आरूढ़ रहे। कॉलेज में आप अंग्रेज़ी और इतिहास पढ़ाने के अतिरिक्त धर्मशिक्षा भी पढ़ाते। इसके अतिरिक्त छात्रावास के भी आप अध्यक्ष थे। यह उत्तरदायित्व जानबूझ कर आपने इसलिये लिया ताकि छात्रों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क रख उनके चरित्र-निर्माण में पूरी सहायता दी जा सके। छात्रावास के छात्रों के साथ आपका पुत्रवत् व्यवहार था। आपके इस काल के छात्रावास में प्रतिदिन प्रातः सायं संध्या-हवन होता था। आर्य युवक समाज की स्थापना भी की गई ताकि छात्रों में वैदिक आदर्श के अनुसार धार्मिक जीवन की और प्रवृत्ति हो। महात्माजी ने कॉलेज तथा आर्यसमाज में योग्य व्यक्तियों को आकृष्ट करने और उनकी नियमित शृंखला कायम रखने के लिए 'आजीवन सदस्यता' की प्रणाली स्थापित की। इसी का यह परिणाम है कि महात्मा जी के कॉलेज के प्राचार्य पद से निवृत्त हो जाने के पश्चात् कई सुयोग्य उत्तराधिकारी संस्था को प्राप्त हो सके। इनमें से कई प्राध्यापक आर्यसमाज के भी प्रशंसनीय कार्यकर्त्ता बने। उन्होंने कहा था :—

जब तक मैं जीवित हूँ, न तो किसी पत्थर की शिला पर मेरा नाम आएगा और न ही डी०ए०वी० की पत्रिका अथवा पुस्तक के प्रकाशन में चित्र छपेगा। उन्होंने इस भीष्म प्रतीज्ञा का आजीवन पालन किया।

6. सादा-सरल-त्यागमय जीवन : —

महात्मा जी का जीवन और रहन-सहन अत्यंत सादा था। लाहौर के एक तंग मोहल्ले में चार रुपये मासिक किराये के मकान में वे रहते थे। घर में फर्नीचर के नाम पर एक डैस्क, एक तिपाई और दूसरे कमरे में एक चारपाई थी। कमरे के फर्श पर एक सादी दरी बिछी होती जिस पर बाहर से आने वाले सज्जन बैठते। कपड़ों में दो खद्दर के पाजामे, दो कमीजें, एक कोट आदि और सिर पर हमेशा खद्दर की पगड़ी बांधते थे। अपने कर्त्तव्य के प्रति वे कितने तत्पर और निष्ठावान थे, इसका परिचय इसी तथ्य से मिल सकता है कि

महात्माजी कॉलेज के समय कभी किसी प्रकार का निजी काम - पत्र आदि लिखना अथवा कॉलेज की कलम-दवात पेंसिल आदि का प्रयोग न करते थे, यद्यपि इस प्रकार की सुविधाओं पर आज सहज अधिकार समझा जाता है। महात्माजी के इस अनुपम त्याग, सरल, सादगी और तपस्यापूर्ण जीवन और उग्र कर्त्तव्य-निष्ठा की ज्योति से कई जीवन-दीपक प्रज्वलित हो उठे। जो प्रभाव सैंकड़ों उपदेश और व्याख्यान वर्षों नहीं डाल सकते, वह एक सधा-तपा जीवन कुछ क्षणों में ही चमत्कार दिखा देता है। उनका जीवन वस्तुतः चलता-फिरता प्रकाश-स्तंभ था।

7. तपेदिक का आक्रमण :

महात्मा हंसराज जी के जीवन में एक ऐसा समय आया जब 30 रुपये मासिक पर गृहस्थी चलना कठिन हो गया। एक ओर रुपये का मूल्य कम हो रहा था और दूसरी ओर महंगाई की निरन्तर वृद्धि। अत्यंत मितव्ययता के होते हुए भी खर्च पूरा नहीं होता था। तब भोजन में ही कटौती करनी पड़ती। परिणामस्वरूप महात्माजी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। मन तो विचारों से बलवान रह सकता है परन्तु शरीर तो आहार माँगता ही है। शरीर निर्बल होने लगा और क्षयरोग के लक्षण प्रकट होने लगे। एक बार जीवन से इतने निराश हो गये कि अपने एक निकटतम सहयोगी से बोले, ''अब तो मौत की ही प्रतीक्षा करना चाहिए।'' चिकित्सा की गई। एलोपैथी से विशेष लाभ न हुआ। आयुर्वेद के उपचार से रोग दूर हो गया। इससे आयुर्वेद-चिकित्सा पर महात्माजी की आस्था बढ़ गई।

8. बलराज की गिरफ्तारी : 7 वर्ष की क़ैद :–

फरवरी 1914 ई० में महात्माजी के पुत्र बलराज की दिल्ली के षड्यंत्र मामले में राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तारी हुई। मुक़द्दमा दिल्ली में चला और बलराज को पहले काला पानी और चीफ कोर्ट में अपील करने पर सात वर्ष की क़ैद की सज़ा दी गई। मुक़द्दमा लड़ने के लिए उस समय भारी फीस देकर ऊँचे से ऊँचे वकील किये गये

परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि गोरी नौकरशाही इस युवक को कठोरतम दंड देने के लिए तुली हुई थी ।

9. पत्नी का देहान्त : कई संकट एक साथ :–

बलराज की माता पुत्र के छूटकर आ जाने की आशा में मुक़द्दमे के बीच ही मृत्यु को प्राप्त हो गयी । नौजवान पुत्र की क़ैद, उसकी माता की मृत्यु के साथ महात्माजी पर तीसरी विपदा अपने बड़े भाई लाला मुल्कराज के आर्थिक संकट के कारण आयी । पीपुल्स बैंक के टूट जाने के कारण लाला जी को ''पंजाब को-आपरेटिव बैंक'' को भारी राशि का भुगतान करना पड़ा । चौथी विपदा, उन्हीं दिनों महात्माजी का छोटा पुत्र योधराज निमोनिया रोग से ग्रस्त हो गया । चारों ओर से इतने महान् संकट आने पर भी महात्माजी तनिक भी विचलित न हुए । वे अपने आर्यसमाज की सेवा के दैनिक कार्यक्रम पूर्ववत् करते रहे, उत्सवों पर बाहर जाते रहे और प्रसन्न एवं निश्चित मुद्रा में लोगों से मिलते-जुलते रहे । नीतिकार ने ठीक ही कहा है –

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता

सम्पत्ति और विपत्ति में महान् पुरुष एक समान ही रहते हैं । चट्टान अचल खड़ी रहती है और लहरों के थपेड़ों से डावांडोल नहीं होती ।

10. 25 वर्ष की सेवा के पश्चात् प्राचार्य पद का त्याग :

1911 ई० के अंत में महात्माजी ने कॉलेज के प्राचार्य पद से 25 वर्ष की अनथक और निरन्तर सेवा के बाद त्यागपत्र दे दिया । कॉलेज कमेटी द्वारा इसे वापस लेने और पद पर आरूढ़ रहने के लिए प्रबल अनुरोध पर भी वे अपने निश्चल पर अटल रहे । फरवरी 1912 को महात्माजी इस पद से मुक्त हो, पूर्ण रूप से आर्यसमाज के प्रचारकार्य में जुट गये । इस समय महात्माजी की आयु 48 वर्ष की थी और इस आयु में कई लोग प्रिंसिपल बनते हैं ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद के रूप में उन्होंने

इस सभा को सुदृढ़ किया। सभा के पास उपदेशक, प्रचारक और धन तीनों की भारी कमी थी। महात्माजी ने पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान, सीमा प्रान्त, जम्मू-कश्मीर आदि प्रान्तों का सघन दौरा किया, सैकड़ों आर्यसमाजों की स्थापना की, हज़ारों रुपये संग्रह किये, दर्जनों सुयोग्य और विद्वान् उपदेशक, प्रचारक और भजनीक रखे तथा वैदिक सिद्धान्तों के पोषक अनेक ग्रंथ तैयार कर सभा के साहित्य विभाग द्वारा उन्हें प्रकाशित कराया। इस कार्य के अतिरिक्त 1912 ई० में महात्माजी पर दयानंद कॉलेज कमेटी की अध्यक्षता का बोझ भी डाला गया। आपने दोनों दायित्वों को अपनी स्वाभाविक तन्मयता के साथ पूरा किया।

11. देशव्यापी उज्जवल सेवा : परोपकार के कार्य : –

महात्माजी के हृदय में बचपन से ही परोपकार, कातर-करुणा और दरिद्रनारायण की सेवा के भाव अंकुरित थे। अपनी इस पुनीत भावना को वे अपने शिक्षाकाल तथा बाद में कार्यक्षेत्र में आने पर विविध प्रकार से कार्यान्वित करते रहे। आर्यसमाज की तो स्थापना ही महर्षि दयानंद जी ने केवल भारत के ही नहीं, किन्तु सम्पूर्ण संसार के उपकार के लिए की है। महात्माजी इस परोपकार वृत्ति के मूर्त रूप थे। 1891 ई० में वे आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान निर्वाचित हुए। 1893 ई० में आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान बने।

भारत में जहाँ भी अकाल, भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपत्तियों से जनता संकटग्रस्त हुई, महात्माजी अपने साथियों सहित अविलम्ब सहायता के लिए पहुँच गये। 1895 ई० में बीकानेर में सूखा पड़ा और साथ ही भयंकर दुर्भिक्ष भी। महात्मा हंसराज और लाला लाजपतराय कॉलेज के छात्र-स्वयंसेवकों के साथ पहुँचे। अनाथ बच्चों को वहाँ से लाकर आगरा, भिवानी और फिरोजपुर के अनाथालयों में प्रविष्ट किया गया। 1899 ई० में राजपूताना में फिर अकाल पड़ा। महात्माजी के तत्त्वावधान में आर्य स्वयंसेवकों और

कार्यकर्त्ताओं ने हिन्दुओं को विधर्मियों के जाल से बचाया और 14,000 बच्चों की रक्षा कर उनकी तात्कालिक व स्थिर सहायता की। कई बच्चों को अनाथालयों में भरती किया गया।

1905 ई० कांगड़ा में प्रलयंकारी भूकम्प ने भारी विनाश किया। महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय स्वयं सेवकों और डॉक्टरों के साथ तत्काल वहाँ सहायता के लिए पहुँचे। 1907 ई० में जब अवध में दुर्भिक्ष का प्रकोप हुआ महात्माजी के तत्त्वावधान में कम से कम 15,000 नर-नारियों की प्राण रक्षा की गई। इन्हीं दिनों मुलतान में प्लेग की महामारी आक्रमण हुआ। शहर में भगदड़ मच गयी और कोई किसी को पानी पूछने वाला भी नहीं था। महात्माजी के तत्त्वावधान में पं० रलियाराम बजवाड़िया ने अपनी जान को जोखम में डाल ऐसा सेवा कार्य किया कि ईसाई नेता को भी कहना पड़ा कि ऐसा सच्चा सेवक कभी नहीं देखा गया। 1918 ई० गढ़वाल में और 1920 ई० में उड़ीसा में, 1921 ई० में शिमला, कांगड़ा और जम्मू में अकाल के आक्रमण हुए। महात्माजी के नेतृत्व में सर्वत्र सोत्साह सहायता-कार्य चलाये गये।

1921-22 में मालावार (केरल) में भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ जिसमें मोपला मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अमानवीय अत्याचार किये, हिन्दुओं को बलात् विधर्मी बनाया गया और हिन्दू नारियों का बड़ी संख्या में अपहरण और उत्पीड़न किया गया। महात्माजी के तत्त्वावधान में पं० ऋषिराम, महात्मा आनन्द स्वामी, पं० मस्तानचन्द महता, सावनमल ने अथक सेवा कार्य किये और 2500 से अधिक हिन्दुओं को पुनः अपने प्रिय धर्म में लाया गया। यहाँ पूरा वर्ष सहायता केन्द्र चलते रहे। 1924 ई० में कोहाट (सीमा प्रान्त) में साम्प्रदायिक दंगा हुआ। हिन्दुओं की लाखों रुपये की सम्पत्ति लूटी व नष्ट की गई। महात्माजी की प्रेरणा पर यहाँ सहायता कार्य चलाया गया। जिला मुजफ्फरगढ़ और रोहतक में बाढ़-पीड़ितों की सहायता

की गयी ।

1932 ई० में रियासत जम्मू-कश्मीर-पुंछ के विभिन्न स्थानों में मुसलमानों द्वारा दंगे आरम्भ कर हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये । महात्माजी की प्रेरणा पर इन संकटग्रस्त स्थानों पर सेवा कार्य किया गया । मुफ्त लंगर खोले गये और जरूरतमंद व्यक्तियों को कपड़े, बिस्तर, बर्तन आदि दिये गये । 1934 ई० में बिहार में प्रबल भूकम्प आया । महात्माजी की प्रेरणा से आर्य प्रादेशिक सभा की ओर से 421 ग्रामों में 50,000 से अधिक व्यक्तियों को भोजन-वस्त्र और गृहस्थी का सामान दिया गया । 27-28 मई, 1934 ई० को क्वेटा में भयंकर भूकम्प आया । 25,000 से अधिक नर-नारी इस प्रलयंकारी रात के कुछ क्षणों में ही मृत्यु के ग्रास हो गये । सरकार द्वारा अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित किये जाने पर भी महात्माजी के सेवा दल ने प्रशंसनीय सहायता कार्य किया । सभा की ओर से लगभग 30,000 रुपये खर्च किये गये ।

12. समाज-सुधार आन्दोलन का नेतृत्व : –

इस प्रकार के देशव्यापी सेवा कार्यों के अतिरिक्त महात्माजी ने समाज-सुधार आन्दोलनों का नेतृत्व किया । हरिजन-उद्धार, छूआछूत, विधवा-विवाह, नारी-शिक्षा, ब्रह्मचर्य-पालन, शुद्धि, संगठन, जात-पात तोड़ना, विवाह संबंधी कुरीतियाँ आदि सामाजिक कार्यों में महात्माजी की दिलचस्पी आजीवन बनी रही । नवम्बर 1927 ई० में सार्वदेशिक सभा की ओर से दिल्ली में प्रथम आर्य महासम्मेलन समस्त आर्य जगत् की ओर से विशाल पैमाने पर आयोजित किया गया । इसकी अध्यक्षता महात्माजी ने की । इस समय अंग्रेज़ी सरकार के इशारे पर मुसलमान संगठित रूप से हिन्दुओं के साथ स्थान-स्थान पर झगड़े, हत्या और लूटमार कर रहे थे । 23.12.1926 ई० में स्वामी श्रद्धानंदजी की दिल्ली में जब दिन-दहाड़े हत्या की गई । महात्माजी ने आर्य महासम्मेलन के अध्यक्ष

के रूप में आर्यसमाज का प्रशस्त पथ-प्रदर्शन किया ।

13. हरिद्वार में मोहन आश्रम की स्थापना :–

आर्यसमाज में बौद्ध भिक्षुओं की तरह वयस्क, शिक्षित और सेवाभाव वाले व्यक्तियों को आकृष्ट करने और ऐसे व्यक्तियों के लिए एकांतवास और साधना द्वारा अध्यात्म मार्ग के साधकों के लिए महात्माजी की प्रेरणा से एक दानी ने हरिद्वार में ''मोहन आश्रम'' स्थापित किया । महात्माजी स्वयं इस आश्रम में प्रतिवर्ष कुछ मास रहते थे । यहाँ वानप्रस्थियों और साधु-संन्यासियों के लिए संस्कृत अध्ययन का भी प्रबन्ध था । परन्तु इस आश्रम का जलवायु स्वास्थ्यप्रद नहीं था । मलेरिया का जोर प्रायः रहता था ।

14. उदर रोग का प्रबल आक्रमण : –

महात्माजी का स्वास्थ्य अब गिरने लगा । उन्होंने अपने जीवन काल में जहाँ डी०ए०वी० कॉलेज में अपने त्याग और कर्त्तव्यनिष्ठ जीवन से कई सुयोग्य शिक्षाविद् उत्तराधिकारी तैयार कर दिये थे, वहाँ आर्य प्रादेशिक सभा का दायित्व संभालने के लिए महात्मा आनन्द स्वामी को सभा का प्रधान पद सौंप दिया था । मोहन आश्रम में रहने के कारण महात्माजी का पेट खराब रहने लगा । 1938 ई० में कुम्भ मेले के बाद जब महात्माजी लाहौर वापस आये तब उनका उदर रोग उग्र रूप धारण कर चुका था । डॉक्टरों ने कहा कि पेट में कैंसर का रोग है । नगर के सर्वोत्कृष्ट डाक्टरों को निमंत्रित कर उनके सम्मिलित विचार-विमर्श के बाद चिकित्सा आरम्भ की गई । डॉक्टरों ने कहा, ''अवस्था चिन्ताजनक है परन्तु आरोग्य-लाभ की भी सम्भावना है ।''

15. महात्माजी की अन्तिम कामना :–

परन्तु अवस्था निरन्तर बिगड़ती गयी । महात्मा जी ने स्वयं अपने इष्ट मित्रों को कह दिया था कि ''यह मेरे जीवन के अन्तकाल का रोग है ।'' 8.11.1930 ई० को महात्मा आनन्द स्वामी उनसे मिलने गये । महात्माजी ने वहाँ बैठे एक दो सज्जनों को बाहर भेजकर एकान्त में आनन्द स्वामी जी से अपनी अन्तिम कामनाएँ इस

प्रकार प्रकट की। (1) डी०ए०वी० कॉलेज कमेटी में आर्यसमाजी व्यक्ति कम हो रहे हैं, इस ओर ध्यान देना चाहिए। (2) समाज का ढांचा न बिखरे। (3) साधु आश्रम होशियारपुर और मोहन आश्रम का ध्यान रखना। (4) वेद प्रचार का काम ढीला न हो। रियासतों में वेद-प्रचार की ओर विशेष ध्यान देना। (5) पाँच सकारों – संध्या, स्वाध्याय, सत्संग, संयम और सेवा का अमूल्य संदेश दिया। जैसे सिखों के लिए पाँच ककार–केश, कंघा, कटार, कच्छा, कड़ा आवश्यक हैं वैसे ही चरित्र निर्माण हेतु प्रत्येक आर्य के लिए पाँच सकार आवश्यक हैं।

16. महात्माजी का त्याग :–

महात्मा हंसराज जी का जीवन ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। जब भी कोई व्यक्ति श्रद्धा से अभिभूत होकर उनके लिए कोई भेंट या उपहार लाते थे तो वे अत्यंत विनम्रतापूर्वक उन्हें अस्वीकार कर देते थे। एक बार एक व्यक्ति उनके फटे हुए कम्बल को देखकर उनके लिए दो शाल लेकर आया। उसके अनुरोध को स्वीकार न कर उन दोनों शालों को उन्होंने कॉलेज के कोष में अर्पण कर दिया। वस्तुतः वे वित्तैषणा, पुत्रैषणा एवं लोकैषणा से ऊपर उठ गये थे।

17. स्थितप्रज्ञ महात्मा जी :–

महात्मा हंसराज के पुत्र बलराज पर 1911 ई० में दिल्ली दरबार के समय लॉर्ड होर्डिंग पर बग फेंकने के षडयंत्र में शामिल होने के आरोप में मुक़द्दमा चला और अंत में काले पानी की सज़ा हुई। जिस दिन अदालत में यह निर्णय सुनाया जाना था उसी दिन महात्मा हंसराज जी को जालंधर में आर्य समाज के उत्सव पर जाना था। वे अदालत में गये, फैसला सुना और वहाँ से सीधे रेलवे स्टेशन पर पहुँचकर जालन्धर रवाना हो गये। जालन्धर में जितने समय रहे उन्होंने किसी से उस सज़ा की चर्चा नहीं की। सारा आर्यजगत् इस अभियोग के परिणाम की बड़ी उत्सुकता और चिन्ता से प्रतीक्षा कर रहा था। अगले दिन लोगों ने जब अखबारों में क्रांतिकारी बलराज को काले पानी की सज़ा का समाचार पढ़ा तब सभी हैरान रह गये। हैरान केवल सज़ा की भयंकरता पर नहीं अपितु महात्मा जी की अद्‌भुत स्थितप्रज्ञता पर भी।

18. आत्मस्वाभिमान महात्मा जी :–

अपने सादगीपूर्ण जीवन में अपने त्याग के अभूतपूर्व उदाहरण

प्रस्तुत किये। आप चाहे अवैतनिक कार्य करते थे किन्तु तो भी आपने कॉलेज की स्याही से कभी अपना व्यक्तिगत कार्य नहीं किया। आप सदा अपनी जेब में दो पैन रखते थे। एक पैन कॉलेज का होता था जिससे कॉलेज का काम करते थे तथा दूसरा पैन अपना व्यक्तिगत कार्य इसी पैन से ही करते थे। कहीं कभी ऐसा त्यागी व पुरुषार्थी व्यक्ति देखने को भी मिलेगा विशेष रूप से आज के युग में जब कि सभी तरफ लूट मच रही है। आज तो छोटे-छोटे पद पर आसीन लोगों का भी प्रयास रहता है कि जिस संस्था में वे कार्यरत हैं उसी संस्था के माली व चपड़ासी उन्हीं के घर काम करते हैं।

19. महाप्राण :

अन्त में कहा, "मेरा अन्तिम संस्कार संस्कारविधि के अनुसार ही हो। कोई फालतू या आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य न हो।" एक साँस छोड़ते हुए महात्मा हंसराज जी ने महात्मा आनन्द से कहा –

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्र तन्नऽआसुव
इस मंत्र का 21 बार पाठ करो।

उन्होंने उनकी आज्ञा का पालन किया।

15.11.1938 ई० रात के 11 बजे, 74 वर्ष की आयु में यह महामानव सदा के लिए ज्योति जोत समा गये। एक हिन्दी कवि के शब्दों में –

हंसराज नाम है चमन का,
एक गाँव का नहीं वतन का,
कुंदन ओ कंचन से तन का,
अग्नि की लपटों में पड़कर,
सोना कुंदन बन जाता है।
त्याग, तपस्या, सेवा से वह,
हंसराज ही बन जाता है।।

पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी

6. पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी

पंडित गुरुदत्त जी का जन्म 26.4.1864 ई० दिन मंगलवार को मौहल्ला मातरावाला, दिल्ली दरवाजा मुलतान में हुआ। घर का नाम मूला था। इनके पिता का नाम राधाकिशन सरदाना था। वे फारसी के विद्वान् थे और पंजाब शिक्षा विभाग में अध्यापक थे। छोटी आयु से ही बालक कुशाग्र बुद्धि एवं वैराग्य प्रवृत्ति का था। 12 वर्ष की आयु में पिता इन्हें हरिद्वार ले गये। चिरकाल के पश्चात् माता-पिता के घर में बालक उत्पन्न हुआ था। जिसे गुरु की कुपा समझ ''गुरुदित्ता'' नाम दिया गया। परन्तु किशोर होने पर बालक ने स्वयं अपना नाम संशोधित कर ''गुरुदत्त'' रख लिया। डॉ० राम प्रकाश गुरुदत्त विद्यार्थी के विषय में लिखते हैं –

पतला बदन, दरम्याना कद, गोरा रंग, चौड़ा माथा, भाव भीनी आँखें, बहुत नर्म और भूरे रंग के सिर तथा दाढ़ी के बाल, मुख पर चन्द्र की कान्ति और सूर्य के तेज की शोभा गम्भीर किन्तु सरल मधुर ध्वनि मिलकर गुरुदत्त के व्यक्तित्व को मनमोहक बनाती थी।

1. बचपन व शिक्षा :

गुरुदत्त के पिता स्वयं एक अध्यापक थे। अतः वे पुत्र की शिक्षा का विशेष ध्यान रखते थे। अतः उन्होंने न्यायालय में कार्य करने वाले एक मुसलमान को उर्दू सिखाने का उत्तरदायित्व सौंपा, क्योंकि पंजाब उस समय उर्दू का गढ़ था और पढ़ाने वाले भी मदरसो में अधिकतर मुल्ला-मौलवी ही होते थे। गुरुदत्त ने शीघ्र ही उर्दू वर्णमाला सीख ली। गुरुदत्त आरम्भ से ही प्रतिभाशाली तो थे ही इनके जीवन में पूत के पाँव पालने में पहचाने जाते हैं। यह उक्ति खरी उतरती है। जब इनके उस्ताद इन्हें उर्दू वर्णमान सिखा रहे थे तो उन्होंने बताया कि 'अलिफ और बे' को जोड़ने से बनता है 'अब'। तो गुरुदत्त ने उत्तर दिया – अलिफ और बे को जोड़ने से तो अलिफ

बे ही बनता है । अब कैसे बन गया? उस्ताद को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने गुरुदत्त को आँखें दिखाई । जब उन्होंने अपने पिता जी से सारी बात बताई तो इनके पिता मन ही मन प्रसन्न हुए परन्तु ऊपरी ढंग से बालक को समझाते हुए कहा – बेटा! मास्टर की बात मान लेनी चाहिए ।

एक बार मुलतान में एक साधु पधारे जिनकी आयु 120 वर्ष थी । परन्तु उनका एक भी बाल सफेद नहीं था । उस साधु को देखकर गुरुदत्त आश्चर्यचकित रह गये । उन्होंने गुरुदत्त को बताया सब योग साधना का फल है । गुरुदत्त और उस साधु में निम्नलिखित प्रश्नोत्तरी हुई–

(1) गुरुदत्त : महात्मा जी, योग सीखने की सर्वोत्तम विधि कौन सी है? जो पतंजलि ऋषि ने योग दर्शन में लिखी है, या कोई दूसरी?

महात्मा जी : पतंजलि ऋषि की विधि सर्वोत्तम है । अन्य विधियाँ न तो उतनी पूर्ण है और न लाभदायक ।

(2) गुरुदत्त : महात्मा जी, क्या आप महर्षि दयानंद के विषय में भी जानते हैं?

महात्मा जी : हाँ हम जंगलों में भ्रमण करते हुए काफी समय तक एक साथ रहे हैं । महर्षि दयानंद जी को पुराण आदि ग्रंथों की कथाओं को सुनकर बड़ा दुःख होता था, क्योंकि वे एक निराकार परमात्मा में ही विश्वास करते थे ।

(3) गुरुदत्त : क्या यह सच है कि वेद सब सत्य विद्याओं का कोष है?

महात्मा जी : हाँ यह सच है ।

(4) गुरुदत्त : महात्मा जी क्या यह भी सच है कि वेदों में सैन्य संचालन और अनेक प्रकार की व्यूह रचना का भी वर्णन है?

महात्मा जी : हाँ, यह भी सच है। ये सिद्धान्त मैं स्वयं भी जानता हूँ। यदि छः सात व्यक्ति मेरे साथ वनों में चलें तो उन्हें रामायण व महाभारत की शैली पर उस समय की शिक्षा दे सकता हूँ।

बालक गुरुदत्त जी की स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि एक बार पढ़ने व सुनने से ही उन्हें पाठ याद हो जाता था। इस प्रकार गुरुदत्त 1881 ई० में मैट्रिक परीक्षा में प्रांत में चौथे नम्बर पर आये। इसके पश्चात् 1883 ई० में एफ०ए० में प्रांत में प्रथम स्थान प्राप्त किया और 1885 ई० में बी०ए० की परीक्षा में भी प्रथम रहे और महात्मा हंसराज ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इसके पश्चात् एम०ए० (विज्ञान) में भी प्रथम दर्जा में पास हुए।

2. महर्षि दयानंद के अंतिम दर्शन :

1878 ई० में जब महर्षि दयानंद मुलतान आये थे परन्तु बालक गुरुदत्त उस समय झंग में थे। तब गंगा घर आयी परन्तु प्यासा प्यास न बुझा पाया। अब प्यासा स्वयं गंगा के पास जा रहा था। जब यह समाचार लाहौर पहुँचा कि महर्षि दयानंद जी को कालकूट विष दे दिया गया और उनकी अवस्था अति शोचनीय है तो 29.10.1883 ई० को गुरुदत्त और जीवनदास अजमेर पहुँचे। आगरागेट से बाहर भिनाई कोठी में महर्षि दयानंद विराजमान थे। सारे शरीर पर फफोले थे। हिचकियाँ आ रही थी। फेफड़ों की सूजन जोरों पर थी। ऋषिवर को एक महीने की भयानक बीमारी ने बिल्कुल कमजोर कर दिया था। जिस दिन गुरुदत्त वहाँ पहुँचे उस दिन महर्षि दयानंद की तबीयत कुछ ठीक थी। रात में गुरुदत्त, डॉ० लक्ष्मणदास के साथ ही सेवा में लग गये। आधी रात को गुरुदत्त ने डॉ० लक्ष्मणदास को जगाकर कहा–

स्वामीजी की नब्ज नहीं मिल रही है और श्वास भी मंद गति से चल रही है।

उस समय तो डॉ० लक्ष्मणदास ने स्थिति संभाल ली, सुबह होते ही अजमेर के सिविल सर्जन कर्नल न्यू मैन को बुलवाया गया। वह महर्षि दयानंद जी की शोचनीय अवस्था को देखकर बहुत हैरान हुआ। सिविल सर्जन ने जाँच परख कर औषधि दे दी परन्तु कोई असर नहीं हुआ। डॉ० लक्ष्मणदास ने गुरुदत्त से धीरे से कहा –

महर्षि तीन चार दिन तक और जीवित रह सकते थे। परन्तु अब भारतीय आकाश का यह सूर्य शीघ्र ही अस्त हो जायेगा।

महर्षि दयानंद जी इनकी सेवा से अत्यधिक प्रसन्न हुये, परन्तु होनी को कौन टाल सकता है दोपहर के पश्चात् जीवन दास जी ने पूछा–''महाराज इस समय कहाँ हैं?'' महर्षि दयानंद जी ने उत्तर दिया ''ईश्वरेच्छा में''। सांयकाल चार बजे बाहर से पधारे हुए व्यक्तियों को बुलाया और सबको आने पर प्रेम भरी दृष्टि सब पर डाली। फिर सब को पीछे खड़े होने का आदेश दिया। केवल गुरुदत्त को कमरे में ठहरने को कहा। कहते हैं कि महर्षि दयानंद ने गुरुदत्त को अपने पास बुलाकर दो चार शब्द धीरे से कहे। इसके पश्चात् कमरे के सब दरवाजे व रोशन दान खुलवा दिये। इसके पश्चात् महर्षि दयानंद ने पूछा-

आज कौनसा पक्ष, क्या तिथि और वार है? वहीं खड़े मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने उत्तर दिया-

कृष्ण पक्ष है तिथि अमावस्या और मंगलवार है।

इसके पश्चात् महर्षि दयानंद ने ऊपर की ओर दृष्टि डाली और वेदमंत्रों का पाठ किया। कुछ समय के लिए समाधिस्थ हुये। नेत्र खोलकर सीधे लेट गये और मुख से इन वचनों का उच्चारण किया -

हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान ईश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा। तूने अच्छी लीला की।

तभी करवट बदली। साँस को रोककर एकदम बाहर फेंक दिया। इस प्रकार 30.10.1883 ई० को सांय के 6 बजे दिन मंगलवार को महर्षि दयानंद ज्योति ज्योत समा गये।

गुरुदत्त ने अपनी आँखों से यह सब दृश्य देखा तो देखते ही रह गये। सात फुट लम्बा शरीर उसमें रोम-रोम से विष फफोलों से पानी के रूप में फूट-फूट कर बह रहा था। महाअसाध्य रोग, असहनीय पीड़ा पर चेहरे पर ऐसी मुस्कान मानो कुछ हुआ ही नहीं। मुख मण्डल पर अपूर्व तेज। नेत्रों में अनोखा आकर्षण। यह सब देखकर गुरुदत्त आश्चर्यचकित होकर तन-मन की सुध खो बैठे।

भयंकर बीमारी के कारण गुरुदत्त, महर्षि दयानंद जी से कोई बातचीत तो नहीं कर पाये, परन्तु दर्शन मात्र से जैसे बहुत पा लिया। जो चीज डार्विन, स्पेन्सर, न्यूटन और बेकन से न मिल सकी, वह ऋषि दर्शन से मिल गई जैसे सारी जिज्ञासा शांत हो गई। घर से चलते समय वह अर्धनास्तिक था। काफी समय से मन में उथल-पुथल और द्वन्द्व का संघर्ष चल रहा थे। इसके विषय में डॉ० रामप्रकाश लिखते हैं –

आज ऐसे पराजित हुए योगी के मौन से कि क्या मजाल जो फिर कभी किसी वैदिक सिद्धांत पर संदेह कर पाये हों। हृदय गुफा का अंधेरा दूर हुआ, प्रकाश फैल गया। दीपक ने बुझते बुझते भी एक और दीपक को प्रकाशित कर दिया। जीवन से जीवन दान की कहानी अनेक बार सुनी थी पर मृत्यु से जीवन मिला हो यह अनोखी घटना पहली बार घटी। कितने ही जीवन इस मृत्यु पर न्योछावर किये जा सकते हैं। जिससे एक भटकते हुए को राह मिल गई। प्यासे की प्यास बुझ गई।

3. महर्षि दयानंद के दर्शन से कायाकल्प : –

महर्षि दयानंद जी के निधन के पश्चात् जिस समय गुरुदत्त अजमेर से लाहौर की ओर चले तो उनकी काया पलट चुकी थी।

वाणी पूर्णतः मौन थी परन्तु हृदय कुछ कह रहा था। उस कथन को हृदय ने सुना लाहौर आते-आते वे सर्वदा बदल चुके थे। पहले का संदेह एवं अविश्वास अब अतीत की कहानी बन चुका था। पिपासु की पिपासा शांत हुई? भटके राही को राह मिली। जिज्ञासु की जिज्ञासा सर्वथा शांत हो चुकी थी। गुरुदत्त का पुनः जन्म हुआ। वस्तुतः गुरुदत्त का जन्म भी मंगलवार को हुआ था और पुनर्जन्म भी मंगलवार को हुआ जिस दिन महर्षि दयानंद का निधन हुआ था।

4. अनियमित दिनचर्या : –

गुरुदत्त की दिनचर्या अनियमित थी। पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना, खेलना-कूदना कोई भी कार्य निमयबद्ध नहीं था। जब सोने की ठान लेते तो कई-कई दिन सोते ही रहते थे। केवल खाना खाने के लिए जागते थे। यदि पढ़ना शुरू कर देते थे तो कई-कई दिन लगातार पढ़ते ही रहते थे। सैर करने जाते तो मीलों चलते जाते थे। यदि घर में बैठे तो कई दिन घर में ही बैठे रहते थे। वह दिल के बादशाह थे। धन की चिन्ता कभी नहीं करते थे। यदि धन किसी को दे दिया तो माँगने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था। परन्तु यदि किसी से उधार ले लेते थे तो लौटाए बिना चैन नहीं आती थी। उनके मतानुसार धन साधन था न कि साध्य ।अतः आवश्यकता से अधिक धन संग्रह नहीं करते थे। उनका विचार था –

निर्वाहमात्र के लिये धर्मानुसार धन कमाना साहूकारी है न कि पाप से अर्थ संग्रह करके विषय भोग करना।

स्वामी अच्युतानंद के शब्दों में –

पंडित जी बड़े ही दानशील और धार्मिक कार्यों में धन व्यय करने वाले थे। राजकीय कॉलेज में 250 रुपये मासिक वेतन पाते थे। परन्तु अगले महीने की पहली तिथि से पूर्व ही यह रुपया सामाजिक कार्यों में व्यय कर देते थे।

वे कहा करते थे–

लोग क्या कहेंगे? इसकी चिन्ता मत करो। कोई व्यक्ति सारे संसार को प्रसन्न नहीं कर सकता।

एक बार मास्टर आत्मा राम अमृतसरी उन्हें प्रातः काल सैर के लिये लेने गये। तो उन्होंने देखा कि पंडित गुरुदत्त छत पर एक टूटी हुई चारपाई पर बिना दरी बिछौने और सिरहाने के सो रहे थे मास्टर आत्माराम ने उन्हें जगाया और पूछने लगे–

पंडित जी नंगी खाट है और वह भी टूटी हुई। इस पर आपको कैसे नींद आ गई।

पंडित जी ने हंसकर उत्तर दिया–

नंगी खाट निद्रा में बाधक कैसे हो सकती है? बेचारे ग़रीब इन्हीं खाटों पर सोकर अमीरों से अच्छी नींद का आनंद लूटते हैं।

इसी प्रकार लाला लालपतराय लिखते हैं –

एक-दो बार जब मुझे उनके पास सोने का अवसर मिला तो मुझे कम्बल या इस प्रकार का अन्य वस्त्र न होने के कारण सारी रात जागना पड़ा जबकि दूसरी ओर वे गाढ़ी नींद सोते रहे तथा सर्दी लगने का कोई चिह्न प्रकट नहीं किया।

5. अद्‌भुत वक्ता :–

पंडित गुरुदत्त जी अद्‌भुत वक्ता थे। उनके मतानुसार सत्य भाषण का ही दूसरा नाम अद्‌भुत वक्ता है। उनकी वाणी में अकथनीय प्रवाह था, ऐसा प्रवाह जो भावविभोर श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जाता था। बड़े-बड़े मौलवी व पादरी उनका भाषण सुनकर स्तब्ध रह जाते थे। आर्य जगत् वर्ष भर उस घड़ी की प्रतीक्षा करता था जब उन्हें पुनः उनका भाषण सुनने का सौभाग्य मिलेगा। अनेक जन उत्सव में केवल उनका भाषण ही सुनने आते थे। भाषण के पश्चात् धन व आभूषणों की वर्षा होती थी।

6. गुरुदत्त और साहित्यसृजन :–

पंडित गुरुदत्त 20.6.1880 ई० को आर्य समाज लाहौर के

सदस्य बन गये थे। पंडित गुरुदत्त ने अष्टाध्यायी छः महीने में पढ़ डाली। यहाँ तक कि लाहौर में उन्होंने एक अष्टाध्यायी कक्षा खोली। इसमें वे स्वयं पढ़ते थे। उनके इस अदम्य उत्साह के फलस्वरूप ही लाहौर के कई व्यक्ति अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए नियमित रूप से कक्षा में आया करते थे। उनकी स्वाध्याय में अत्याधिक रुचि थी। पुस्तकों पर वे बहुत धन व्यय किया करते थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश का 18 बार अध्ययन किया था। वे कहा करते थे कि सत्यार्थप्रकाश की प्रत्येक पुनरावृत्ति पर मुझे सदा नई बातों का बोध होता है। उन्होंने तो यहाँ तक लिखा है–

सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति चंद आने में मिल जाती है। यदि इसका मूल्य अधिक होता तो अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी इसे खरीदता। मुझे यह ग्रंथ इतना प्रिय है कि इसे खरीदने के लिए गले में झोली डालकर चंदा मांगने के लिए भी तैयार हूँ।

पंडित गुरुदत्त ने निम्नलिखित ग्रंथ लिखे –

(1) वैदिक-संज्ञा विज्ञान 1888 ई० (The Terminology of the Vedas) क्योंकि इस ग्रंथ का मुख्य सार वेद था। अतः इस परिश्रमपूर्वक लिखे ग्रंथ को पंडित गुरुदत्त ने अपने गुरु महर्षि दयानंद जी को समर्पित कर दिया था।

(2) वैदिक संज्ञा विज्ञान एवं योरुपीय विद्वान (The Terminology of the Vedas and Europeon Scholars) वस्तुतः इन दोनों पुस्तकों में वेदभाष्य की विशुद्ध आर्षशैली का वर्णन किया गया था ।

(3) ईशोपनिषद् : ईशोपनिषद् का भी भाष्य किया गया था।

(4) माण्डूक्योपनिषद् : इसका भी अंग्रेज़ी में अनुसाद करते हुए टीका लिखी थी। आदि

7. डी०ए०वी० स्कूल की स्थापना :–

पंडित गुरुदत्त महात्मा हंसराज और लाला लाजपतराय–ये तीनों सहपाठी एवं मित्र थे। अब आर्य समाज महर्षि दयानंद की याद में एक भव्य स्मारक बनाना चाहता था। महात्मा हंसराज ने अपने

बड़े भाई से कहा कि मैं अपना जीवन डी०ए०वी० स्कूल को दान देना चाहता हूँ। अतः उसके बड़े भाई मुल्कराज ने कहा कि यदि आप अपना जीवन स्कूल को दोगे-मैं अपनी आय का आधा भाग आजीवन तुम्हें देता रहूँगा। इस पर महात्मा हंसराज ने उत्तर दिया–

मैं दयानंद ऐग्लो वैदिक स्कूल खुलने पर अवैतनिक हैडमास्टर बनने के लिए तैयार हूँ।

31.5.1886 ई० को गुरुदत्त ने आर्यसमाज मंदिर लाहौर की सभा में दयानंद ऐंग्लो वैदिक स्कूल की आवश्यकता पर भाषण दिया। 1.6.1886 ई० को इस स्कूल की लाहौर में स्थापना हो गई। महात्मा हंसराज सर्वप्रथम हैडमास्टर बने। इसके निर्माण में गुरुदत्त ने कहा था–

यह कॉलेज ऋषि दयानंद के शरीर का स्मारक नहीं है, परन्तु उनके विचारों तथा त्रिकाल सत्य की स्मृति है। जो व्यक्ति मेरे कॉलेज संबंधी विचारों से सहमत न हो वह इस कार्य के लिए एक पाई भी दान न करे। क्योंकि मुझे लोकाचार से बहुत घृणा है।

8. निराला व्यक्तित्व :

वस्तुतः गुरुदत्त का व्यक्तित्व अपने ढंग का निराला था। वे अनोखे व्यक्तित्व के धनी थे। वे शांत स्वभाव, अत्यंत परिश्रमी, वेदों के व्याख्याता, मेधावी, गंभीर चिन्तक, धुरन्धर वक्ता, अदम्य साहस एवं उत्साह की साक्षात् प्रतिमा थे। वे निर्विवाद विज्ञानवेता पूर्वीय व पाश्चात्य संस्कृति के ज्ञाता व धार्मिक रुचि के व्यक्ति थे।

9. स्वास्थ्य बिगड़ा :

गुरुदत्त धुन के इतने पक्के थे कि बीमार होने पर भी प्रचार-यात्रा करते रहते थे। अतः वे क्षयरोग के शिकार हो गये। एलोपैथिक, आयुर्वेदिक, यूनानी आदि सभी इलाज किये गये। कई मुख्य डॉक्टर उनके मित्र थे और वे उन्हें बार-बार कहते थे–

अंडे व मांस का शेरवा लेने से ही क्षयरोग दूर हो सकता है।

परन्तु उनका उत्तर था –

क्या अंडे व मांस भक्षण से मैं सदा के लिये मृत्युमुख से बच

जाऊँगा । जब इस मानव शरीर का अंत अवश्यंभावी है तब मैं अपने सिद्धान्त का त्याग कैसे करूँ ।

हम देखते हैं कि आज अनेक परिवारों में मांस-भक्षण का द्रुतगति से प्रचार हो रहा है । छोटे-छोटे बच्चे अंडों को आलू की भाँति खाते हैं । ऐसे व्यक्तियों को पंडित गुरुदत्त के सिद्धांत दृढ़ता से शिक्षा लेनी चाहिए । डा० राम प्रकाश के शब्दों में–

पंडित गुरुदत्त जी से जब पूछा गया कि आप ऋषि का जीवन चरित्र लिखना चाहते थे । तदर्थ सामग्री का जो चयन किया गया, वह कहाँ है?

उन्होंने उत्तर दिया–

ऋषि का जीवन कलम से नहीं स्याही से लिख रहा हूँ । काग़ज़ पर नहीं अपने प्राणों से अपने रक्त से हृदयपटल पर लिख रहा हूँ । शरीर ने साथ नहीं दिया । इस जीवन में दयानंद सा न बन सका । इसलिये मैं यह शरीर छोड़ रहा हूँ कि अगली बार इस कार्यसिद्धि के लिए आत्मा को अधिक उपयुक्त शरीर मिलेगा ।

10. महाप्राण :–

अंततः 26 वर्ष की अल्पायु में 19.3.1890 ई० को प्रातःकाल 7 बजे लाहौर में आर्य समाज का यह देदीप्यमान नक्षत्र सदा के लिये अस्त हो गया । आपने अपने जीवन को आरंभिक काल में ही आर्य समाज की जो निष्कामसेवा की वह आर्यसमाज के इतिहास में सदा स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेगी । एक उर्दूशायर ने आपके जीवन के विषय में लिखा है–

फूल तो दो दिन ही खिलकर बहारे गुलिस्तां दिखला गये ।
हसरत उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुरझा गये ।।

पुनश्च–

सूरज चाँद का जिक्र तो नित्य यहाँ चलता है ।
हर पड़े बहारों में हर साल फूलता फलता है ।।
इतिहास के गर्भ में लेकिन समा जाती हैं सदियाँ ।
तब जाकर कहीं एक गुरुदत्त मिला है ।।

लाला लाजपतराय जी

7. लाला लाजपतराय

1. लाल-बाल-पाल :

भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड मिंटो द्वारा अपने सर्वोच्च अधिकारी ब्रिटेन स्थित भारत मंत्री और उदार दल के नेता लार्ड मार्ले को दिये गये उस लम्बे समुद्री तार के अंश हैं जो 'भारत-मिंटो तथा मार्ले 1905-10' पुस्तक में अंकित है। ''मार्च 1857 ई० के भारत के प्रथम स्वतंत्रता युद्ध जिसे अंग्रेज़ी सरकार ने गदर का नाम दिया है, को 1907 ई० में 50 वर्ष पूरे हो जाते थे।'' मिंटो ने इसी विषय में आगे कहा, ''1858 ई० की मई के मध्य को याद रखो। मेरा प्रबल विश्वास है कि राजनीतिक कारणों को छोड़ते हुए भी 1857 ई० की स्मृतियाँ ही वर्तमान वर्ष को असाधारण बना रही हैं।'' गौरी नौकरशाही के दिल में सरकारी जासूसों और अब गोरे समाचार पत्रों—जैसे 'पायोनियर' (लखनऊ), सिविल मिलिटरी गजट' (लाहौर), 'इंग्लिशमैन' (कलकत्ता) आदि – ने मजबूती से यह डर बैठा दिया था कि 1857 ई० की स्मृति में अर्ध-शताब्दी मनाने के गुप्त प्रयत्न हो रहे हैं और इस सारे षडयंत्र के सूत्रधार तीन व्यक्ति हैं—लाल-बाल-पाल—अर्थात् पंजाब के लाला लाजपतराय, महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक और बंगाल के विपिन चन्द्र पाल। समूचा सरकारी तंत्र इन तीनों के नाम से कांपता था। लार्ड मिण्टो ने अपने इस उपर्युक्त तार में लालाजी के संबंध में पंजाब के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर इबटसन से प्राप्त गुप्त सूचनाओं के आधार पर आगे यह कहा है कि 'लालाजी के काम करने के दो तरीके हैं : पहला लाहौर, अमृतसर, रावलपिंडी, फिरोजपुर, मुलतान, पेशावर आदि छावनियों में जाकर फोजों में बग़ावत फैलाना और दूसरा देहात में जाकर उन लोगों को भड़काना जो किसान हैं और जिनमें से प्रायः सेना की भरती की जाती है।''

2. लाहौर के योरुपियों में आतंक :

इस शताब्दी के पहले दशक के सरकारी आदेशों और भारत-स्थित योरुपियों के निजी पत्रों और अर्धगोरे समाचारपत्रों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि उस समय अंग्रेज़ी सरकार – विशेषतः पंजाब की – लाला लाजपतराय से बेतहाशा घबराई हुई और उन्हें हौआ समझती थी। लाहौर-स्थित योरुपियों में गुप्त रूप से यह समाचार फैला दिया गया था कि 1907 ई० के प्रथम सप्ताह में किसी भी दिन लाहौर पर लाजपत राय के नेतृत्व में हमला हो जाएगा, गोरों और उनके परिवारों को चुन-चुन कर उसी प्रकार मार दिया जाएगा जिस प्रकार सन् 1857 ई० में कानपुर, मेरठ और दिल्ली में मार दिया गया था। इसलिए सब योरुपियों को पिस्तौल, बन्दूक से लैस रहना चाहिये और अपने परिवार को लाहौर से तत्काल बाहर भेज देना चाहिए। इसका परिणाम यह निकला कि 7.5.1907 ई० को लाहौर से लगभग सभी योरुपियों ने अपने परिवारों को शिमला व कलकत्ता भेज दिया और स्वयं लारेन्स बाग़ स्थित 'योरुपियन क्लब' में सशस्त्र आकर रहने लगे जहाँ रात भर कड़े पहरे की व्यवस्था थी।

3. आर्य समाज मेरी माता :–

राजनीतिक क्षेत्र में भारत के शीर्षस्थ नेता होते हुए भी लालाजी सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करने में कभी संकोच नहीं करते थे कि आर्यसमाज मेरी माता है और मैं जो कुछ भी तुच्छ सेवा भारत माता की अपने जीवन में कर सका हूँ, वह सब महर्षि दयानंद की सजीव और क्रांतिकारी शिक्षा और आन्दोलन के फलस्वरूप ही है। लालाजी अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक कट्टर देशभक्त, निर्भीक, संकटों का साहस से मुकाबला करने वाले और बड़े जोशीले वक्ता थे। भाषणकला की दृष्टि से उस समय भारत में दो ही व्यक्ति थे जो इस कला में निपुण थे और जिनके एक-एक शब्द का जनता पर जादू सा असर होता था। यह थे बंगाल के विपिनचन्द्र पाल जो

बाद में गांधी-युग में काफी पिछड़ गये थे और दूसरे थे पंजाब के लाला लाजपतराय, जिन्हें जनता ने प्रेम से 'शेरे-पंजाब' की उपाधि से विभूषित किया था। लालाजी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न थे और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक हिमालय के सदृश देशभक्त और मातृभूमि की सेवा में अविचल रहे। अपने विचारों को वे सदा निर्भीकता से स्पष्ट भाषा में प्रकट करते थे और देश के लिए बड़े से बड़ा त्याग और आत्म-आहुति देने में वह प्रथम पंक्ति के थे। 1907 ई० में सूरत-कांग्रेस में सर फिरोजशाह मेहता और श्री गोखले के नेतृत्व में नरम दली और लोकमान्य तिलक तथा श्री खापर्डे के नेतृत्व में गर्म दली कांग्रेस नेताओं में जो कलह हुआ और जिसकी चरम सीमा कांग्रेस पंडाल में जूता, लाठी और कुर्सी फेंकने तक हुई, उसका मूल कारण यह था कि गर्म दली लाला लाजपतराय को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहते थे। लालाजी इसी वर्ष नवम्बर में मांडले के जेल से देश-निर्वासन के 6 मास बाद छूटकर आये थे। लालाजी के जीवन को अत्यन्त निकटता से देखने के बाद अंग्रेज़ मजदूर दल के प्रमुख पत्रकार श्री नेविन्सन ने कहा था –

लालाजी का जीवन तपस्या तथा उदारता से पूर्ण था। उन्होंने निर्धनों तथा अशिक्षितों की सेवा के लिए, भारी सांसारिक सफलता का जीवन त्याग दिया था। वह उन पुरुषों में से थे जिनकी आत्माओं में अपने देशवासियों के दुःख प्रवेश कर जाते हैं।

–लाला लाजपतराय (श्री अलगाव शास्त्री), पृष्ठ 241

लालाजी के ऐसे अदम्य उत्साहपूर्ण और अत्यंत लोकप्रिय नेतृत्व से गोरी नौकरशाही का घबराना स्वाभाविक ही था। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक अपने अध्यापन कार्य को छोड़कर, देश की तत्कालीन अवस्थाओं से बाध्य हो, राजनीति में आये, ठीक इसी प्रकार, लालाजी भी पंजाब चीफ कोर्ट के सफल और चोटी के वकील होते हुए भी राजनीति में अवस्थाओं द्वारा घसीट लिये गये, परन्तु

राजनीति में रहते हुए भी उन्होंने कभी अपने को आर्य समाज की विचारधारा से विच्छिन्न नहीं किया। प्रथम युद्ध के समय जब उन्हें कई वर्ष तक अमेरिका में रहना पड़ा तब उन्होंने सबसे पहला काम अंग्रेज़ी में आर्य समाज का इतिहास लिखने का किया। इस पुस्तक ने विदेशों में आर्य समाज का परिचय दिया।

4. जन्म, बचपन, शिक्षा :–

लाला लाजपतराय का जन्म 28.1.1865 ई० को अपनी ननिहाल जिला फिरोजपुर (पंजाब) के ठोड़ी ग्राम में हुआ। इनके पिता राधाकृष्ण लुधियाना के जगरावां कस्बे में रहते थे। पिता सरकारी प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। लाजपतराय के तीन भाई और दो बहनें थीं। पिता का वेतन, कई वर्ष के बाद, 35 रुपये मासिक तक पहुँचा था। पिता ने ऐसे स्कूल में शिक्षा पाई थी जिसका मुख्य अध्यापक एक मौलवी था। इसलिए राधाकृष्ण पर इस्लाम का गहरा प्रभाव था। वे घर में नमाज पढ़ते, रोजे रखते, तहमद बाँधते और क़ुरान का पाठ करते थे। वैश्य और जैनी होने से मांस-भक्षण तो नहीं करते परन्तु मुसलमानों को प्रायः अपने घर भोजन कराते और कभी उनके घर खा आते अथवा उनका पका भोजन अपने घर ले आते। मास्टर राधाकृष्ण को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने का बड़ा शौक था। विश्व के सब मुख्य धर्मों को उन्हें अच्छी जानकारी थी। लालाजी ने 1911 ई० में अपने पिता की स्मृति में जगरावाँ में राधाकृष्ण हाईस्कूल स्थापित किया और कई प्राइमरी स्कूल खोल दिये थे।

5. चोटी के वकील : आर्यसमाज में प्रवेश :–

लाजपतराय कुशाग्र बुद्धि छात्र थे। 15 वर्ष की आयु में उन्होंने 1880 ई० में पंजाब और कलकत्ता – दोनों विश्वविद्यालयों से मैट्रिक परीक्षा पास की। फिर लाहौर गवर्नमैंट कॉलेज में दाखिल हो गये। एफ०ए० की पढ़ाई के साथ कानून की पढ़ाई भी शुरू कर ही

दी। पिता मुश्किल से आठ-दस रुपये मासिक इस किशोर को भेजते। लाजपतराय को अत्यन्त कम खर्च करते हुए लाहौर जैसे नगर में पढ़ना पड़ता था। मुख्तारी पास करके 1885 ई० में पहले जगरावाँ, फिर हिसार में और अन्त में 1892 ई० में लाहौर में वकालत आरम्भ कर दी। हिसार में आप लगभग 6 वर्ष रहे और विशिष्ट सफल वकील थे। मासिक आय हज़ार-डेढ़ हज़ार रुपये थी। इनके कॉलेज जीवन के सहपाठियों में पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, राजा नरेन्द्रनाथ आदि थे। इनके सहवास से, इन पर भी आर्य समाज का प्रभाव पड़ा और हिसार में रहते हुए आपने आर्य समाज में सोत्साह भाग लेना आरम्भ कर दिया। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग प्रायः इनके मकान पर ही होते। पाँच वर्ष पश्चात् लाजपतराय जी के परिश्रम से ही हिसार में भव्य आर्य समाज मन्दिर का निर्माण हुआ। हिसार में वे नगरपालिका के सदस्य और कई वर्ष तक इसके अवैतनिक मंत्री भी रहे।

5. डी०ए०वी० कालेज के स्तम्भ :–

1892 ई० में आप लाहौर आ गये और प्रांत के मूर्धन्य वकीलों में आपने शीघ्र ही स्थान पा लिया। साथ ही गुरुदत्तजी और हंसराज जी के साथ मिलकर खूब उत्साह से आर्यसमाज की सेवा करने लगे। 1886 ई० में महर्षि दयानंद की स्मृति में लाहौर में डी०ए०वी० कालेज स्थापित हो चुका था। आपका इस संस्था के साथ अत्यन्त घनिष्ठ संबंध हो गया। लालाजी की वक्तृत्व कला में तो दैवी शक्ति थी। आपका भाषण मुर्दा-दिलों में भी जोश पैदा कर देता था। डी०ए०वी० कालेज के लिए अपनी इस अद्‌भुत वाक्‌शक्ति का प्रयोग कर इन्होंने लाखों रुपया पंजाब और अन्य प्रांतों में दौरा कर इकट्ठा किया और स्वयं भी अपने पास से दान देते रहे। इस कॉलेज की प्रबन्ध समिति के आप वर्षों तक मंत्री और उप-प्रधान भी रहे। लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर धर्म-प्रचार और कॉलेज के

लिए अपील लालाजी ही किया करते थे। हज़ारों की संख्या में श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो आपका भाषण सुनते थे। अपील के बाद अनायास ही धन की वर्षा आरम्भ हो जाती थी। लालाजी कई वर्ष तक डी०ए०वी० कॉलेज में, बिना वेतन के, इतिहास और राजनीति पढ़ाते रहे।

6. अकालग्रस्त क्षेत्रों में सेवा कार्य :–

आर्य समाज की शिक्षा के प्रभाव में लाला जी दरिद्रनारायण की सेवा के लिए सदा अग्रसर रहते थे। 1896 ई० में उत्तरप्रदेश के आगरा बुन्देलखण्ड इलाके में और 1900 में राजस्थान में भयंकर अकाल पड़ा। फिर 1907-1908 ई० में उड़ीसा और मध्यप्रदेश में दुर्भिक्ष हुआ। हज़ारों हिन्दू विधर्मी होने लगे। ईसाइयों ने जनता की ग़रीबी से अनुचित लाभ उठाने के प्रयत्न शुरू कर दिये। लालाजी ने अपने सहयोगी आर्य सदस्यों और स्वयंसेवकों सहित सहायता और राहत का काम संगठित रूप से प्रारम्भ कर दिया। हज़ारों हिन्दुओं की रक्षा हुई। करीब 300 अनाथ बच्चों को लेकर जब लालाजी लाहौर स्टेशन पहुँचे तो नगर-वासियों ने हज़ारों की संख्या में वहाँ पहुँच कर उनका स्वागत किया। अनाथ बच्चों को इससे बड़ा आश्वासन मिला कि इतनी विशाल जनता उनके साथ है। इन अनाथ बच्चों के लिए लालाजी ने उसी समय आर्यसमाज की तत्त्वावधान में लाहौर, फिरोजपुर और मेरठ में अनाथालय कायम किये। देश-विभाजन तक ये अनाथालय जनता की बड़ी ठोस सेवा करते रहे।

7. कागड़ा-भूकम्प में राहत कार्य :–

1905 ई० में कांगड़ा नगर में भयंकर भूकम्प आया। जन-धन की भारी क्षति हुई। लालाजी कॉलेज के छात्रों और अन्य आर्यसज्जनों के साथ वहाँ अविलम्ब सहायता के लिए पहुँच गये।

8. गुलाबदेवी तपेदिक अस्पताल :–

तपेदिक के रोगियों के औषध-उपचार और खुले स्वच्छ

वातावरण में रहते हुए भोजन-निवास आदि की समुचित व्यवस्था के लिए लालाजी ने अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति में लाहौर में 'गुलाबदेवी तपेदिक अस्पताल' खोला था। विभाजन के बाद जालन्धर में इसकी पुनःस्थापना की गयी है।

9. लाहौर की जनता ने लालाजी को कंधों पर उठा लिया :–

पंजाब के नौजवान तो आप पर इतने फिदा थे कि नवम्बर 1905 ई० में जब आप इंग्लैंड में कांग्रेस शिष्टमंडल की ओर से प्रचार कार्य समाप्त कर भारत वापस आये और लाहौर पहुँचे तो वहाँ अपार जन-समूह स्टेशन पर आपके स्वागत के लिए मौजूद था। उस समय लाहौर के वयोवृद्ध नेता श्री जोगेन्द्र बोस ने आपको अपने कंधों पर उठा लिया। जब बग्गी में आपको बैठाया गया तो युवकों ने घोड़े हटाकर अपने हाथों से उस गाडी को शहर में दो मील से अधिक दूरी तक खींचा। देश में ऐसा सम्मान, संभवतः सबसे पहले आपको ही मिला था। लाला जी के जीवन पर अन्य जिन व्यक्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा वह थे इटली के स्वाधीनता-संग्राम के नेता मेजिनी, गैरीबाल्डी और भारत के महापुरुष योगिराज श्रीकृष्ण तथा वीर शिवाजी। आपने उर्दू में इन सब महापुरुषों के जीवन-चरित्र प्रकाशित किये और वे खूब बिके। सरकार इससे घबरा गई और गुप्त सरकुलर निकालकर स्कूलों में इन पुस्तकों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया।

10. सर सैयद अहमद के नाम खुले पत्र :–

लालाजी को राजनीति में लाने वाली एक ओर महत्वपूर्ण की घटना उस समय हुई जब हिसार में, युवाकाल में ही, उन्होंने अपनी वकालत आरम्भ की थी। कांग्रेस का पहला अधिवेशन सन् 1885 ई० में बम्बई में श्री उमेशचन्द्र सी० बनर्जी की अध्यक्षता में हुआ। इस कांग्रेस का संचालन वस्तुतः एक अंग्रेज़ सरकारी अधिकारी श्री ए०ओ० ह्यूम के हाथ में था। इस समय मुसलमानों के

तत्कालीन नेता और बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सैयद अहमद ने कांग्रेस का विरोध करते हुए मुसलमानों को इससे अलग रहने की सलाह दी। सर सैयद ने इस संबंध में कई लेख लिखे और भाषण भी दिये। लाला जी के पिता मुंशी राधा किशन इस मुस्लिम नेता के बड़े प्रशंसक और अनुयायी भी थे।

इन्हीं के कारण मुंशी जी घर में मुसलमानों की तरह नमाज पढ़ते रोजा आदि रखते थे, यद्यपि भोजन में वे कट्टर शाकाहारी और गो-हत्या के विरुद्ध थे। लाला जी ने 'आपके एक पुराने अनुयायी के पुत्र' इस नाम से सर सैयद के 'कोहिनूर' पत्र में दर्जन से अधिक खुले पत्र लिखकर कड़ाकेदार विरोध किया। सर सैयद इससे बहुत घबरा गये परन्तु श्री ह्यूम ने इन पत्रों को खूब पसन्द किया और अंग्रेज़ी में अनुवाद कराकर बड़ी संख्या में देश में बँटवाया। इससे युवक लाजपतराय को काफी ख्याति मिली और इसी समय 1888 ई० के इलाहाबाद में हुए कांग्रेस अधिवेशन में पं० मदनमोहन मालवीय तथा पं० अयोध्यानाथ ने आपका विशेष स्वागत किया। आपके भाषणों को बहुत पसन्द किया गया।

11. बंग-भंग और अकाल :–

1905 ई० में भारत के वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल के राजनीतिक आन्दोलन को निर्बल करने और मुसलमानों को खुश करने के लिए बंगाल के दो टुकड़े कर दिये, पूर्व और पश्चिम बंगाल। इससे सारे देश में विरोध की ज्वालाएं भड़क उठीं। गुप्त षडयंत्र दल कायम हो गये। कई जगह योरुपीय मारे गये। इस समय लाला जी देश के प्रमुख राजनीतिक नेताओं में थे। 1903 ई० में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में पहली बार हुआ। लाला जी अब लाहौर में ही वकालत करते और प्रमुख वक़ील थे। इस अधिवेशन में लालाजी ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और यहाँ लोकमान्य तिलक और श्री

गोखले से परिचय हुआ जो बाद में काफी घनिष्ठ हो गया ।

12. पगड़ी संभाल ओ जट्टा : –

पंजाब की नौकरशाही की आँखों में लाला जी खूब चुभ रहे थे । वह मौके की तलाश में थी । प्रान्त का तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर इबटसन बड़ा अदूरदर्शी और कट्टर गोरा सिविलियन था । 1907 ई० में उसने पंजाब की नहरी आबादियों, लायलपुर और मिंटगुमरी के जिलों, में ऐसे भूमि-कानून बनाये जिससे इलाके के किसानों में खलबली मच गयी । उधर, रावलपिंडी के इलाके में भूमि का लगान बढ़ा दिया । इस प्रकार सारे पंजाब के जमींदार तिलमिला उठे । इसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी शामिल थे । लायलपुर और रावलपिंडी–दोनों इस आन्दोलन के मुख्य केन्द्र थे ।

सरदार अजीतसिंह–शहीद भगतसिंह के चाचा–इनके प्रमुख नेता थे । लाला जी का इस आन्दोलन से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था । 1907 ई० के अन्त में लायलपुर में 'जमींदार एसोसिएशन' की ओर से एक सभा की गई । संयोजकों के अत्यंत अनुरोध पर लाहौर के कुछ प्रमुख हिन्दू-मुस्लिम वकीलों के साथ लाला जी वहाँ पहुँचे और उन्होंने केवल वह आवेदन पत्र पढ़कर सुनाया जो सरकार के पास इस कानून के विरोध में भेजा जाना था । सरदार अजीतसिंह के भाषण खूब गर्म थे और जनता बार-बार उनसे बोलने के लिए आग्रह कर रही थी । यहाँ पर पंजाब का प्रसिद्ध गीत 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' पहली बार श्री बांकेदयाल ने गाया था और जनता ने बहुत पसन्द किया था । रावलपिंडी में आंदोलन के प्रमुख नेताओं को, जो वकील थे, जिला मजिस्ट्रेट ने बुलाकर वकालत का लाइसेंस जब्त करने का नोटिस दिया । इससे सारे पंजाब में खलबली मच गई । सरदार अजीतसिंह ने यहाँ भी काफी गर्म भाषण दिया था । इन वकीलों पर यही जुर्म लगाया गया कि वे इस सभा में शामिल हुए थे । लाला जी रावलपिंडी पहुँचे । नगर में हड़ताल थी । नोटिस रद्द

करवाने की सुनवाई जब कचहरी में होने की थी तब करीब 20000 लोग वहाँ जमा थे। सरकार इससे घबरा गई और जिला मजिस्ट्रेट ने नोटिस वापस ले लिया। परन्तु पुलिस ने अपने जासूस छोड़ रखे थे जो जनता को लूटमार करने और गोरों को पीटने के लिए उकसा रहे थे। नगर में कुछ विद्रोह हो गये और राह-चलते गोरों को पीटा भी गया। कई लोग गिरफ्तार किये जिनमें कई शिक्षित युवक भी थे।

13. मांडले को देश-निर्वासन :

लाला जी की गिरफ्तारी के संबंध में अब लाहौर में अफवाहें उड़ रही थीं। कुछ गोरे शासकों ने संकेत किया –

सारी शरारत की जड़ तो लाला लाजपतराय है पर वह अभी तक स्वतंत्र घूम फिर रहा है और जल्दी ही उसकी बारी आने वाली है।

आखिर 9.5.1907 ई० को प्रातः जब लाला जी न्यायालय जाने को तैयार ही थे, तभी अनारकली थाने के दो पुलिस अधिकारी उन्हें बुला ले गये। कोठी से अपनी बग्घी पर वह बाहर निकले ही थे कि दो गोरे पुलिस अफसर पायदान पर चढ़ गये। यहीं से बंद गाड़ी में स्टेशन पर तैयार एक स्पेशल गाड़ी द्वारा – जिसमें पुलिस का कड़ा पहरा था और जिसकी सब खिड़कियाँ तथा दरवाजे बंद थे–उन्हें कलकत्ता और वहाँ से जहाज द्वारा बर्मा और अन्त में 15 मई को मांडले जेल में बंद कर दिया गया। लाला जी को यह पता लग गया कि सरदार अजीतसिंह को भी यह निर्वासन दंड दिया गया था। दोनों मांडले जेल में होते हुए भी एक-दूसरे से मिल नहीं सकते थे। यहाँ पर एक गोरे अधिकारी ने लाला जी से मुलाक़ात करते हुए कहा–

आपने सेनाओं को बरगलाया था और अंग्रेज़ी सरकार आपको नाना साहब समझती है। 1857 ई० में जो नाना साहब द्वारा सिपाही-विद्रोह के लिए हुआ वही 1907 ई० में लाजपतराय द्वारा होगा। यह विश्वास, आमतौर पर अंग्रेज़ी सरकार, योरुपियों और अधगोरों में व्याप्त था।

14. मांडले से मुक्ति :–

परन्तु लाला जी का यह देश-निर्वासन सरकार को बड़ा महंगा पड़ा। सारे देश में प्रबल आन्दोलन, असन्तोष और विरोध की भयंकर अग्नि भड़क उठी। इसकी गूंज अंग्रेज़ी संसद् में लगातार उठने लगी। वहाँ सदस्यों द्वारा तकरीबन हर रोज ही, लाला जी के इस निर्वासन और भारत में व्याप्त घोर असन्तोष के बारे में प्रश्न पूछे जाते और भारत-मंत्री लार्ड मार्ले के लिए सन्तोषजनक उत्तर देना कठिन हो जाता। स्थिति को संभालना दिन-प्रतिदिन कठिन हो रहा था। यह भी स्पष्ट हो चुका था कि लाला जी के विरुद्ध ऐसा गम्भीर आरोप नहीं था जिसके लिए सामान्य कोर्ट कार्यवाई न कर विशेष कानून के अधीन ऐसे कठोर दंड को न्यायसंगत ठहराया जा सकता। आखिर 11.11.1907 ई० को लाला जी को मुक्ति का सन्देश मिल गया। फिर उसी प्रकार बंद गाड़ी और कड़े पुलिस पहरे में लाला जी को मध्य प्रदेश के रास्ते से लाहौर लाया गया। सरदार अजीतसिंह को दूसरी गाड़ी से लाया गया।

16. अधगोरे पत्रों पर मानहानि का मुक़द्दमा :

कलकत्ता के अधगोरे पत्र 'इंगलिशमैन' और लंदन के 'डेली एक्सप्रेस' पर लाला जी ने मिथ्या आरोप लगाने के हेतु 50000 रुपये के मानहानि के मुक़द्दमे किये। लाला जी दोनों मुक़द्दमों में जीत गये। 'इंगलिशमैन' पर मुक़द्दमे के खर्च के अतिरिक्त 15000 रुपये और -'डेलीएक्सप्रैस' पर 50 पौंड हर्जाने की डिग्री हुई। 'डेली एक्सप्रैस' पर कम डिग्री होने का कारण यह था कि लाला जी का अधिक देर तक लंदन में केवल इसी काम के लिए ठहरना संभव नहीं था। लालाजी ने हर्जाने की दोनों राशियां सार्वजनिक संस्थाओं को दान कर दीं।

17. कलकत्ता कांग्रेस की अध्यक्षता :–

कांग्रेस का प्रचार करने और विदेशों में भारत की दशा से

जनता को परिचित कराने तथा स्वतंत्रता-आन्दोलन में सहायता व सहानुभूति प्राप्त कराने के लिए लाला जी कई बार योरुप-अमरीका गये। प्रथम युद्ध के समय तो उनके भारत वापस आने पर रोक लगा दी गई थी। जब वह वापस आये तो कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी के हाथ में आ चुका था। लाला जी ने इसमें पूरा सहयोग दिया। 1919 ई० में गांधी जी के असहयोग कार्यक्रम पर विचार करने के लिए कलकत्ता में विशेष कांग्रेस अधिवेशन हुआ जिसके लिए लालाजी को अध्यक्ष चुना गया। इसके पश्चात् लालाजी के सहयोग से गांधी जी का सविनय अवज्ञा का आन्दोलन देश भर में विशेषतः पंजाब में जोरों से चलने लगा। 1921 ई० में लाला जी को गिरफ्तार कर लिया गया और लाहौर जेल में दो वर्ष के कारावास दंड के साथ बंद कर दिया गया।

18. कांग्रेस में मतभेद : स्वराज्य पार्टी में :–

इसके पश्चात् भारतीय राजनीति में परिवर्तन आने लगा। एक ओर देश में साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गये और दूसरी ओर गांधी जी के पंचसूत्री बहिष्कार कार्यक्रम की व्यर्थता देख जेल से छूट कर आये नेताओं ने इस पर पुनः विचार किया। इसी के फलस्वरूप स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ। पंजाब का चार्ज लाला जी को दिया गया था परन्तु लाला जी के मतभेद कांग्रेस से बढ़ते गये क्योंकि गांधी जी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं की नीति अत्यधिक मुस्लिम पक्षीय थी। हिन्दू हितों की खुले आम हत्या हो रही थी। कोकोनाडा काँग्रेस में अध्यक्ष पद से मौलाना मुहम्मद अली ने प्रस्ताव किया था कि अछूतों का हिन्दू और मुसलमानों में बँटवारा कर दिया जाए। लाला जी इस प्रस्ताव से बहुत दुःखी हुए। आपने सन् 1925 ई० में अछूतोद्धार का आन्दोलन आरम्भ किया। देश में राजनीतिक जागरण पैदा करने के लिए लाला जी ने लाहौर में 'तिलक स्कूल ऑफ पालिटिक्स' स्थापित किया। कांग्रेसी आन्दोलन के समय आपने उर्दू में 'वन्दे मातरम्' दैनिक आरम्भ किया था और अब 'पीपुल' नामक

अंग्रेज़ी में साप्ताहिक जारी किया। यह पत्र राजनीति-प्रधान था। आपने कई पुस्तकें लिखीं जिनमें 'अनहैप्पी इंडिया' का बहुत प्रचार हुआ। लाला जी यह जानते थे कि निष्ठावान कार्यकर्ताओं के बिना राष्ट्र कभी उन्नत नहीं हो सकता। इसी दृष्टि से आपने 'लोक सेवक मंडल' (Servant of People Party) कायम किया जिसके द्वारा तैयार किये हमारे देश के प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन भी इसी संस्था के सदस्य थे। वस्तुतः श्री लालबहादुर को राजनीतिक जीवन की दीक्षा लाला जी के सम्पर्क और उनकी इस संस्था में आने से ही मिली। लाला जी ने इस संस्था को अपना 5000 पुस्तकों का पुस्तकालय और 15000 रुपये का अपना भवन दान दे दिया था। 1925 ई० में स्वराज्य पार्टी की ओर से केन्द्रीय असेम्बली में जलान्धर क्षेत्र में निर्विरोध चुन लिये गये।

19. साइमन कमीशन का बहिष्कार और लाठी प्रहार :–

अंग्रेज़ी सरकार द्वारा नियुक्त पूर्ण अंग्रेज़ों का कमिशन–जिसे साइमन कमीशन कहा जाता है–भारत की वैधानिक योग्यता की जांच के लिये 1920 ई० में भारत आया। कांग्रेस ने इसके पूर्ण बहिष्कार की घोषणा की। 30 अक्टूबर को साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा। इस बहिष्कार-आन्दोलन का नेतृत्व लाला जी कर रहे थे। भारी जुलूस 'साइमन कमीशन लौट जाओ' नारे लगाता हुआ स्टेशन पर सर्वथा शांत और अनुशासन में खड़ा था। अधिकारियों ने उसी समय शांत जुलूस पर पुलिस को डंडे चलाने का आदेश दे दिया। लाला जी पर खास तौर से लाठी-प्रहार किया गया और स्वयं सोनियर सुपरिटैंडेंट स्कॉट ने यह कार्य किया। स्कॉट का साथी साण्डर्स भी इसमें सहायक था। लाला जी ने बड़ी वीरता से इन सतत लाठी-प्रहारों का सहा। आपने ललकार कर पुलिस अफसर का नाम पूछा, परन्तु इसका उत्तर अधिक दंड प्रहार में मिला। इस मार से 65

वर्षीय वृद्ध लाला जी चारपाई से फिर उठ न सके। लाला जी एवं जनता की ओर से इस कांड की खुली और निष्पक्ष जांच की मांग कई बार की गई, परन्तु नौकरशाही राजी न हुई।

20. महाप्राण : –

इस बीमारी में भी लाला जी कार्य करते रहे। 16 नवम्बर को उनकी हालत बिगड़ गयी। 31 अक्टूबर की शाम की सार्वजनिक सभा में लाला जी ने जो निम्नलिखित शानदार शब्द कहे थे वे सचमुच अंग्रेज़ी अत्याचारियों के लिए भयंकर चेतावनी के रूप में थे और इतिहास में सदा स्मरण किये जाएंगे।

मुझ पर किया हुआ प्रत्येक प्रहार अंग्रेज़ी साम्राज्य के कफ़न की एक कील सिद्ध होगी।

17.11.1928 ई० भोरवेला में देश का लगभग आधी सदी का यह साहसी, वीर, अदम्य, उत्साही और बहुमुखी प्रतिभाशाली नेता समूचे देश को शोक-सागर में डुबोकर मातृभूमि पर बलिदान हो गया।

महात्मा नारायण स्वामी

8. महात्मा नारायण स्वामी

यह प्रायः समझा जाता है कि सार्वजनिक सेवा-क्षेत्र में वही व्यक्ति सफल हो सकता है जिसका जन्म एक विशेष सम्पन्न कुल में हुआ हो और जिसने उच्च शिक्षा प्राप्त की हो । दूसरी ओर कुछ लोग यह कहते भी प्रायः सुने जाते हैं कि ''हम अयोग्य हैं'' किस प्रकार कोई सेवा-कार्य कर सकते हैं?'' दोनों प्रकार की धारणाएं सर्वथा निराधार हैं और आत्महीनता की परिचायक हैं । इन पृष्ठों में हम आर्य समाज के जिस उज्ज्वल रत्न की यशोगाथा लिखना आरम्भ कर रहे हैं, उसने अपने समस्त जीवन से यह सिद्ध कर दिया कि एक सामान्य परिवार में उत्पन्न और साधारण शिक्षा प्राप्त व्यक्ति आत्मविश्वास और अध्यवसाय (घोर परिश्रम) इन दोनों की पूँजी से उच्चतम शिखर तक पहुँच सकता है ।

1. जन्म, बचपन, शिक्षा :–

अलीगढ़ में सरकारी नौकरी में लगे श्री सूर्यप्रसाद के परिवार में सन् 1866 ई० में बसन्त-पंचमी को जिस बालक का जन्म हुआ, उसका नाम नारायणप्रसाद रखा गया । प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू, फारसी, अरबी से हुई और बाद में अंग्रेज़ी शिक्षा हुई । सन् 1889 ई० में बालक के पिता की 52 वर्ष की आयु में ही मृत्यु हो गई । फलस्वरूप पढ़ाई छूट गयी । उस समय नारायण प्रसाद 9वीं कक्षा में पढ़ता था । घर की आर्थिक अवस्था विशेष अच्छी न होने के कारण इन्हें 22 वर्ष की आयु में ही मुरादाबाद कलैक्टरी में नौकरी करनी पड़ी । 23 वर्ष की आयु में विवाह हो गया ।

2. महर्षि दयानंद के दर्शन : –

नारायण प्रसाद जब हाथरस के स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ाते थे, तब वहाँ महर्षि दयानंद का आगमन हुआ । उस समय नगर में इस बात की बड़ी हलचल थी कि एक बड़ा सुधारक और आदित्य ब्रह्मचारी आया हुआ है । स्कूल के अनेक विद्यार्थी और अध्यापक बड़ी

उत्सुकता से उस सड़क के किनारे खड़े हो गये जहाँ से महर्षि गुजरने वाले थे। थोड़ी देर में एक बग्घी में सवार महर्षि दयानंद जी उसी मार्ग से निकले। महात्मा नारायण स्वामी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं–

उनके दिव्य और चमकते हुए चेहरे के देखने के साथ ही ऐसा कोई न था जो प्रभावित न हुआ हो। उनके सायंकाल के समय व्याख्यान होने की घोषणा भी हुई और हममें से अनेक विद्यार्थी जिनमें एक मैं भी था, उनका व्याख्यान सुनने को उत्सुक हुए परन्तु स्कूल में एक संस्कृत अध्यापक ने हम सब को बतलाया कि स्वामी जी अधर्म की बात सुनाया करते हैं, उनके सुनने से पाप लगेगा। इसलिए उनके व्याख्यान में किसी को नहीं जाना चाहिए। इस पाप के भय से अनेक विद्यार्थी रुक गये और उनमें एक मैं भी था।

3. सत्यार्थप्रकाश से विचारों में क्रांति :–

मुरादाबाद में दृढ़ आर्य श्री पं० हरसहायसिंह के सत्संग से नारायण प्रसाद ने 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ा और अब उनके हृदय में विचारों की क्रांति हुई। अभी तक वे कट्टर मूर्तिपूजक और शैव थे। अब वे आर्यसमाज के रंग में क्रमशः अधिक से अधिक रंगते गये और आर्यसमाज मुरादाबाद के उपमंत्री चुने गये। इस समय वे मुंशी नारायण प्रसाद के नाम से विख्यात थे। इनमें एक विशेष गुण था कि वे सदा आन्तरिक साधना, आत्मपरीक्षण और जीवन में कठोरता से व्रत-पालन का अभ्यास करते रहते थे। प्रत्येक बसन्त पंचमी को–जोकि इनका जन्म दिन था–यह आत्मनिरीक्षण द्वारा अपनी परीक्षा करते और भविष्य के लिए व्रत ग्रहण करते थे। 1895 ई० में अपने जन्म-दिवस बसन्त पंचमी को इन्होंने अपने जीवन के निम्नलिखित 10 नियम बनाये हैं –

(1) आर्यसमाज के नियमों और मन्तव्यों का दृढ़ता से पालन।

(2) ईमानदारी और परिश्रम से कमाये हुए धन का ही उपयोग।

(3) समस्त कार्यों के लिए समयविभाग ।

(4) यदि माँगना पड़े तो उससे मर जाना अच्छा है ।

(5) एक स्त्रीव्रत ।

(6) नाच, तमाशा, थियेटरों का देखना पाप है ।

(7) जनता के साथ व्यवहार में निष्पक्षता ।

(8) स्वाध्यायशील होना और हृदय को उच्च सेवाभाव से भरना ।

(9) आरामतलब न होकर कठिन कार्य करने का अभ्यास ।

(10) जीवन का अन्तिम भाग केवल परोपकार में बिताना ।

आप का विवाह तो 23 वर्ष की आयु में हो गया था परन्तु सम्मिलित परिवार की प्रथा के कारण पांच वर्ष तक पत्नी से अलग रहे। 1897 ई० में उनका क्रियात्मक पारिवारिक जीवन प्रारम्भ हुआ। सौभाग्य से उन्हें बड़ी सेवाव्रती, धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यपरायण पत्नी मिली। परन्तु उनका यह गृहस्थ सुख अधिक दिन नहीं टिक सका। पहला बच्चा हुआ जो पैदा होते ही प्रभु को प्यारा हो गया। कुछ वर्ष बाद दूसरा बच्चा हुआ जो 6 मास के बाद कालग्रस्त हो गया और उसके कुछ समय बाद ही उनकी पत्नी का भी निधन हो गया। इस प्रकार लगभग 20 वर्ष तक वे गृहस्थ आश्रम में रहे।

नौकरी के समय के अतिरिक्त अब उनकी सारी शक्ति आर्यसमाज की सेवा में लगने लगी। उनके परिश्रम से मुरादाबाद में आर्यसमाज का मन्दिर निर्माण हुआ और शुद्धिकार्य में विशेष प्रगति आई। नगर के पौराणिकों ने इस शुद्धि का घोर विरोध किया और आर्यसमाजियों को जात-बिरादरी से बहिष्कृत करने का निश्चय किया। गली-कूचे, बाज़ारों में राह चलते आर्यों को सनातन धर्मी गाली देने, परन्तु अल्प संख्या में होते हुए भी आर्य पुरुषों ने जिस धैर्य और सहनशीलता का परिचय दिया, उसका नगर-निवासियों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। इस समय नारायण प्रसाद मुरादाबाद आर्यसमाज के मंत्री थे। आप इस समय जिस योरुपीय कलैक्टर की पेशी में काम

करते थे । उसे पता चल गया कि इस प्रकार आर्यों को गालियां दी जाती हैं । उसने आप को बुला कर कहा–

तुम इनकी शिकायत हमारे पास करो, सरकार कड़ी कार्यवाई करेगी ।

आप ने उत्तर दिया आर्यसमाज तो सेवा करने वाली संस्था है । ये गालियाँ देने वाले स्वयं चुप हो जाएँगे । परन्तु कलैक्टर ने शहर कोतवाल को बुलाकर आदेश दिया कि सब सनातनी पंडितों को कोतवाली बुलाकर डांट दो कि अगर वे गाली देना तत्काल बंद नहीं करेंगे तो उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाएगी । फिर तो किसी की हिम्मत न हुई कि वह गाली देवें ।

इन्हीं दिनों मुरादाबाद में भयंकर प्लेग फैली । नारायणप्रसाद ने अपने आर्य सहयोगियों की सहायता से सेवा कार्य प्रारम्भ किया । सबसे कठिन काम मृत देह को श्मशान तक ले जाना था । आर्यसमाज के इस सेवा कार्य की जिले के अधिकारियों ने भी बड़ी प्रशंसा की ।

5. आर्यसमाज में पूर्ण रूप से : सरकारी नौकरी का त्याग :–

नारायणप्रसाद की इस प्रकार की आर्यसमाज की निष्काम और लगनशील सेवा और दृढ़ आचरण की ख्याति चारों ओर फैलने लगी । उनका कार्यक्षेत्र अब नगर की सीमाओं से बाहर प्रान्त की ओर विस्तृत होने लगा । आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के वे सक्रिय अन्तरंग सदस्य थे । सन् 1899 ई० में उनके प्रस्ताव पर सभा की ओर से गुरुकुल खोलने का निश्चय किया गया और यह भी कि इस कार्य के लिए 20,000 रुपये एकत्र किये जाएँ । नारायण प्रसाद जी ने नौकरी से 6 मास का अवकाश ले और शिष्टमंडल बना प्रांत का दौरा किया और 13,000 रुपये एकत्र हुआ । अब इन्होंने नौकरी छोड़ समस्त जीवन आर्यसमाज और गुरुकुल की सेवा में अर्पित करने का निश्चय किया ।

पत्नी का देहान्त हो जाने से पारिवारिक जीवन तो समाप्त ही हो चुका था। पेंशन का अधिकार प्राप्त करने के लिए एक ही उपाय था कि वे ऐसा प्रमाणपत्र पेश करें कि रोग के कारण वे काम के अयोग्य हैं। अगर वे त्यागपत्र देकर मुक्त हो जाएँ तो पेंशन प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं रहेगा। साथ ही, नौकरी का काल समाप्त होने में कुछ वर्ष ही शेष थे। नारायण प्रसाद जी कलैक्टरी में ऐसे पदो पर रहे थे जहाँ वे रिश्वत द्वारा हज़ारों रुपये कमा सकते थे। जिले के उच्च अधिकारी आप की सच्चरित्रता और ईमानदारी से अत्यन्त प्रसन्न थे। इन्होंने अब यह सोचा कि जब मैंने सारी आयु किसी प्रकार की भी बेईमानी नहीं की, तब एक प्रमाणपत्र के लिए क्यों बेईमानी करूँ फलतः सन् 1912 के अंत तक साधिकारी अवकाश लेकर फिर उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और अपनी आत्मा की पवित्रता स्थिर रखी, यद्यपि पेंशन पाने के लिए केवल डेढ़ वर्ष शेष रह गया था। अब आपका सारा जीवन आर्यसमाज और गुरुकुल के अर्पित हो गया। गुरुकुल अब फर्रुखाबाद से हटकर वृंदावन में राजा महेन्द्र प्रताप द्वारा दान की गई भूमि पर आ चुका था। नये भवन आदि बन चुके थे।

6. गुरुकुल वृंदावन की स्थापना :–

नारायण प्रसाद जी सर्वतोभावेन गुरुकुल के अर्पित हो गये। वे संस्था के मुख्याधिष्ठाता और आचार्य–दोनों थे। अब जनता ने उन्हें ''मनीषी नारायण प्रसाद'' का आदरणीय नाम दे दिया था। उन्होंने 10 वर्ष तक इस गुरुकुल का संचालन वहाँ से बिना एक भी पैसा वेतन लिये किया। जब सरकारी नौकरी छोड़कर आये थे, तो उनके पास 2,000 रुपये नक़द थे। यह राशि उन्होंने एक बैंक में जमा करा दी, जहाँ से उन्हें 13 रुपये मासिक ब्याज मिलता था। इस रकम में से 10 रुपये वह भोजन-शुल्क के गुरुकुल भंडार में दे देते और शेष 3 रुपये वस्त्र, दूध, पुस्तक आदि के लिए खर्च करते थे। सन् 1920 में बसन्त के दिन–जो उनका जन्मदिन था–मनीषी नारायणप्रसाद

गुरुकुल की सेवा से मुक्त हो एकान्त वास के लिए स्थान खोजने, उत्तर प्रदेश के कुछ नगरों को देखने के बाद, अल्मोड़ा-नैनीताल के पहाड़ों में गये। वानप्रस्थ आश्रमी के लिए एकान्तवास आवश्यक है। इस न्यूनता को पूर्ण करने के लिए मनीषी नारायण प्रसाद ने उपयुक्त स्थान की तलाश करते हुए नैनीताल जिले में रामगढ़ स्थान को चुना। यह अत्यन्त रमणीक स्थान था। 20.5. 1920 ई० से इस आश्रम में निवास करना प्रारम्भ कर दिया। अब मनीषी नारायण प्रसाद को जनता ने 'महात्मा नारायण प्रसाद' नाम से विभूषित किया।

7. रामगढ़ में एकान्तवास : योगियों की खोज :–

रामगढ़ में रहते हुए महात्मा जी आस-पास के गाँवों के विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी, हिन्दी, गणित आदि निःशुल्क पढ़ाते थे। योग का अभ्यास नियमित रूप से चलता था और साथ ही योगियों की खोज में ऋषिकेश आदि स्थानों की यात्रा भी कभी-कभी करते रहते थे। इसमें कुछ विशेष सफलता नहीं हुई। महात्मा जी के इस आश्रम का नाम 'नारायण आश्रम' जनता ने स्वयं रख दिया। 4.5.1922 ई० को महात्मा नारायण प्रसाद जी ने चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया और स्वामी सर्वदानंद जी से दीक्षा लेकर अपना नया नाम 'नारायण स्वामी' रखा। इस प्रकार अब वे महात्मा नारायण स्वामी के नाम से जन-विख्यात हुए। उस समय इनके पास 2,000 रुपये थे। यह सारी राशि उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा को इसके ब्याज से आर्य साहित्य प्रकाशन के लिए देकर पूर्णाहुति के साथ संन्यास आश्रम ग्रहण किया।

8. संन्यास आश्रम में प्रवेश : जन्म-शताब्दी समारोह के प्रधान :–

महात्मा नारायण स्वामी जी का पद अब आर्य जगत् में अखिल भारतीय नेता के रूप में मान्य था। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष उस समय स्वामी श्रद्धानंद जी थे, परन्तु बीमार रहने के कारण वे इस पद से मुक्त होना चाहते थे। उनके स्थान पर महात्मा

में सभा ने निश्चय किया कि 15.2.1925 ई० तक मथुरा में 'दयानंद जन्म शताब्दी महोत्सव' मनाया जाए। इस समिति के प्रधान यद्यपि स्वामी श्रद्धानंद जी निर्वाचित किये गये परन्तु कार्यकर्ता प्रधान के रूप में शताब्दी का उत्तरदायित्व महात्मा नारायण स्वामी जी के कंधों पर ही था।

निःसन्देह, सब प्रकार की दृष्टि से जैसे जनता का उत्साह लाखों की संख्या में भारतीयों का दूर-दूर से महोत्सव में शामिल होना, संन्यासी मंडल के नेतृत्व में आर्य नर-नारियों का व्यवस्थित भव्य जुलूस, आर्थिक सहायता और दान की प्राप्ति, उत्सव के दैनिक कार्यक्रम, शताब्दी के विशाल मेले में पुलिस की बिना सहायता के, आर्य स्वयंसेवकों का सेवा-कार्य, जिसके परिणामस्वरूप किसी प्रकार की दुर्घटना व अपराधों का न होना आदि के कारण यह महोत्सव अद्वितीय सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इससे आर्यसमाज का यश देश-विदेश चतुर्दिक फैल गया। सरकारी अधिकारियों का कहना था कि ऐसा सुव्यवस्थित, सुनियोजित और सब प्रकार के अपराधों से सर्वथा रहित, जिसमें लाखों आबाल वृद्धों ने भाग लिया हो, बिना सरकारी सहायता के –धार्मिक मेला अथवा महोत्सव, भारत के तत्कालीन इतिहास में, एक प्रकार से अपवाद रूप ही था। इस उज्ज्वल सफलता का श्रेय स्वामी श्रद्धानंद जी, महात्मा नारायाण स्वामी और उनके सहयोगियों को ही दिया जाना चाहिए। इस महोत्सव के फलस्वरूप सार्वदेशिक सभा की स्थिति दृढ़ हो गयी।

9. आंत्र शोध का बड़ा आपरेशन : –

इस महान् आयोजन से स्वामी जी अप्रैल 1925 ई० के अन्त तक निवृत्त हो रामगढ़ आश्रम में आये ही थे कि उन्हें 'आंत्र-शोध' (एपेण्डिसाइटिस) रोग ने घेर लिया। इसके लिए मेडिकल कॉलेज लखनऊ में ऑप्रेशन के लिए जाना पड़ा। यह ऑप्रेशन काफी बड़ा और भयंकर था। समस्त आर्य जगत् इस समाचार से चिन्तित हो उठा। डा० श्यामस्वरूप, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय आदि मुख्य आर्य

सज्जन लखनऊ शुभकामनाओं के साथ पहुँच गये। 25.10.1925 ई० को डा० भाटिया ने क्लोरोफार्म सुंघाकर ऑप्रेशन किया। स्वामीजी ने बड़े धैर्य के साथ इस रोग का मुकाबला किया। डॉक्टर साहब ने कटी हुई आँत आर्य नेताओं को दिखाते हुए बताया कि अभी तक इस अस्पताल में इतनी बड़ी आँत कभी नहीं काटी गयी।

10. सार्वदेशिक सभा के प्रधान : बलिदान-भवन में निवास : –

स्वामी जी स्वस्थ हों, पुनः प्रचार-यात्राओं में जुट गये। 1926 ई० में महर्षि दयानंद जी जन्मभूमि टंकारा में शताब्दी मनाई गई। स्वामी जी वहाँ गये और आर्यसमाज की स्थापना की गई। इसी वर्ष 23 दिसम्बर को स्वामी श्रद्धानंद जी की दिल्ली में एक मुस्लिम गुंडे के हाथों हत्या की गई। इस बलिदान से समूचे देश, विशेषतः हिन्दू जाति में भयंकर प्रतिक्रिया हुई। स्वामी जी के शुद्धि-संगठन कार्य से मुसलमान बहुत असंतुष्ट थे। कांग्रेस की–विशेषतः गांधी जी की मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति से विधर्मियों के हौंसले बढ़ गये थे। 25.12.1926 ई० को स्वामी श्रद्धानंद जी की अन्त्येष्टि क्रिया पूर्ण वैदिक रीति में हुई जिसमें लाखों नर-नारी अन्तिम श्रद्धांजलि प्रकट करने के लिए श्मशान-भूमि तक गये। हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंद जी की पुण्य स्मृति में 'श्रद्धानंद ट्रस्ट' कायम किया गया जिसमें महात्मा नारायण स्वामी जी ने सक्रिय भाग लिया। बलिदान-भवन में स्वामी श्रद्धानंद जी के बलिदान के पश्चात् कौन वहाँ रहे–यह प्रश्न पैदा हुआ। नगर निवासी हिन्दू और आर्य पुरुष बलिदान-भवन को खाली नहीं देखना चाहते थे क्योंकि खाली रहने से विधर्मी यह समझते कि हिन्दू आतंकित हो गये हैं। फलतः आर्य नेताओं के अनुरोध पर महात्मा नारायण स्वामी जी को अपना मुख्य केन्द्र रामगढ़ छोड़कर बलिदान-भवन दिल्ली बनाना पड़ा।

सार्वदेशिक सभा के प्रधान के अतिरिक्त महात्मा जी शुद्धि सभा के भी प्रधान निर्वाचित किये गये। 1926 ई० में महात्मा जी के

परिश्रम से ज्वालापुर में वानप्रस्थ आश्रम खोला गया। स्वामी श्रद्धानंद जी की हत्या एक गहरे षडयंत्र का परिणाम थी जिसमें पुलिस की जान बूझकर की गई लापरवाही भी शामिल थी। अंग्रेज़ी सरकार तो मुस्लिम पक्षपाती थी ही, कांग्रेस भी मुसलमानों को नाराज नहीं करना चाहती थी। इस सारी स्थिति पर विचार करने और स्वामी श्रद्धानंद जी के शुद्धि और संगठन कार्य को तीव्र गति देने के लिए आर्य नेताओं ने 'सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन' करने का निश्चय किया। यह सम्मेलन दिल्ली में बड़ी शान से हुआ। महात्मा नारायण स्वामी के प्रस्ताव पर 50,000 रुपये और 10,000 स्वयंसेवक भरती करने का निश्चय किया गया। ?

ये दोनों लक्ष्य आर्य जनता ने बड़े उत्साह के साथ पूरे किये। बरेली में आर्य समाज मन्दिर में मुसलमान कोतवाल के साथ सैंकड़ों मुसलमान शहर में से निकलने वाले ताजिया के संबंध में पुलिस के साथ चल रहे झगड़े की आड़ में समाज मन्दिर में जूते समेत घुस आये, साप्ताहिक सत्संग में विघ्न डाला, समाज का फाटक तोड़ दिया, यज्ञवेदी का अपमान किया। फिर समाज मन्दिर पर कब्ज़ा कर 3-4 पुलिस सिपाहियों को वहाँ दिन-रात रहने के लिए नियुक्त कर दिया। स्वामी जी को पता चला। वे दिल्ली से तत्काल बरेली आये और उन्होंने सिपाहियों के समाज से न निकलने तक अनशन और सत्याग्रह की घोषणा कर दी। पुलिस अधिकारी घबरा गये और चार घंटे के भीतर ही मन्दिर से सिपाहियों को हटा दिया गया। इस मुस्लिम कोतवाल का बरेली से तबादला कर दिया गया।

11. साहित्यसृजन : –

कथा, उपदेश, व्याख्यान आदि द्वारा प्रचार के साथ-साथ स्वामीजी आर्य सिद्धान्तों के प्रसार के लिए साहित्यसृजन का कार्य भी निरन्तर करते रहते थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी जैसे 'आत्मदर्शन', 'मृत्यु और परलोक', 'वैदिक संध्या रहस्य', 'विद्यार्थी जीवन रहस्य', 'प्राणायाम विधि', 'कर्त्तव्य-दर्पण' आदि।

12. सेवा कार्य : अर्धशताब्दी उत्सव :

दूसरा आर्य महासम्मेलन 1932 ई० में बरेली में स्वामीजी की अध्यक्षता में हुआ। इन्हीं 1930 ई० से 1932 ई० तक तीन वर्ष दिल्ली के आर्य पुरुषों और शुद्धि सभा के झगड़े चलते रहे। स्वामीजी को मध्यस्थता का अधिकार देकर भी सम्बद्ध विवाद ग्रस्त व्यक्तियों ने अपने वचनों का पालन नहीं किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की जाँच और उसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए एक कमीशन स्वामीजी की अध्यक्षता में नियुक्त किया परन्तु सभा में दलबंदी होने के कारण इस कमीशन की 7-8 मास बाद निकाली रिपोर्ट का कोई उपयोग नहीं किया गया। 1936 ई० में अजमेर में श्रीमद् दयानंद निर्वाण अर्धशताब्दी महोत्सब शाहपुराधीश की अध्यक्षता में 14.10.1933 ई० से 20.10.1933 ई० तक मनाया गया। 1934 ई० में बिहार में प्रबल भूकम्प आया। हाथ-पांव के दर्द रोग के बावजूद स्वामीजी बिहार में भूकम्प पीड़ितों की सहायतार्थ आर्य समाज द्वारा किए जा रहे कार्य में सहयोग देने वहाँ पहुँचे। अक्तूबर 1936 ई० में क्वेटा में भूकम्प आया। स्वामीजी वहाँ भी सहायता कार्य के लिए पहुँचे।

13. सार्वदेशिक सभा की अध्यक्षता से मुक्ति :–

31.3.1937 ई० को सार्वदेशिक सभा के वार्षिक चुनाव में स्वामी जी ने अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार 14 वर्ष तक सभा की अध्यक्षता करने के पश्चात् इस पद से मुक्ति प्राप्त कर ली। इन 14 वर्षों में स्वामी जी की अनथक लगन और कर्मण्यता के कारण सभा की स्थिति सब प्रकार से उन्नति के शिखर तक पहुँच चुकी थी। सभा ने खेद के साथ स्वामीजी का त्यागपत्र स्वीकार किया।

14. हैदराबाद-सत्याग्रह : प्रथम सर्वाधिकारी : –

अंग्रेज़ी शासन काल में दक्षिण हैदराबाद भारत की संभवतः सबसे बड़ी रियासत थी। यद्यपि यहाँ की बहुसंख्यक जनता हिन्दू थी परन्तु रियासत का मालिक निजाम था जो कट्टर मुसलमान और ाथ

हिन्दू विद्वेषी था। वहाँ हिन्दुओं के विशेषकर आर्य-समाजियों के साथ अत्यंत पक्षपातपूर्ण व्यवहार होता था। उनका खुल्लम-खुल्ला उत्पीड़न तथा उनके धार्मिक अधिकारों का हनन लगातार होता रहता था। सार्वदेशिक सभा लगातार 6 वर्ष तक रियासत के अधिकारियों के साथ इन शिकायतों के दूर करने और धार्मिक स्वतंत्रता दिये जाने के बारे में पत्रव्यवहार करती रही परन्तु कुछ फल नहीं निकला। सारे देश के आर्य समाजियों में रियासत के आर्य पुरुषों में विशेषतः असन्तोष लगातार बढ़ रहा था। अन्ततः 6. 10.1938 ई० को सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग की विशेष बैठक बुलाई गई जिसमें सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि हैदराबाद रियासत में आर्य समाज के धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिए उचित कार्यवाही करने का अधिकार महात्मा नारायण स्वामी को दिया जाए। स्वामीजी ने इस आन्दोलन का संचालन करने के लिए हैदराबाद के पास ही अंग्रेज़ी राज्य में, शोलापुर को मुख्य केन्द्र बनाया। स्वामी स्वतंत्रतानंद जी तथा अन्य सहयोगियों के साथ आप दिल्ली से 30.10.1938 ई० को शोलापुर पहुँच गये।

यद्यपि शोलापुर में कोई आर्यसमाज नहीं था, परन्तु वहाँ हिन्दू जनता ने पूर्ण सहयोग देने का निश्चय किया। साथ में हैदराबाद स्टेट की आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से विशेष प्रेरणा मिल रही थी। गम्भीर विचार के बाद निश्चय किया गया कि 1938 ई० को बड़े दिनों की छुट्टियों में शोलापुर में आर्य-महासम्मेलन किया जाए। निश्चित् किया गया कि आर्यसमाज के आन्दोलन की नीति किसी राजनीतिक दल से सम्बद्ध न होते हुए और न ही मुसलमान वर्ग के प्रति द्वेषभावना रखते हुए केवल मात्र धार्मिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की दिशा में ही हो। यह महासम्मेलन बड़ा सफल रहा और आन्दोलन चलाने के लिए सत्याग्रह समिति का गठन तथा उसके प्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी को नियुक्त करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

15. गुलबर्गा में साढ़े 6 मास की जेल : –

हैदराबाद में प्रवेश करने में रियासत की ओर से पैदा की गई अनेक प्रकार की बाधाओं के बावजूद स्वामी जी 31.1.1939 ई० को प्रातः 8 बजे हैदराबाद रेलगाड़ी से पहुँच गये। स्वामीजी को आर्यसमाज मन्दिर, सुलतान बाज़ार पहुँचते ही पुलिस ने अपनी हिरासत में ले लिया और वहाँ से रियासत की सीमा पर आपको कोर्ट के डाक-बंगले में ठहराकर पुलिस अधिकारी की निगरानी में शोलापुर वापस भेज दिया गया। स्वामीजी पुनः 7.2.1939 ई० को 20 स्वयंसेवकों के साथ शोलापुर से गुलबर्गा के लिए रेल से रवाना हो हैदराबाद रियासत में, निजाम सरकार की आज्ञा भंग कर प्रविष्ट हो गये। यहाँ उन पर मुक़द्दमे का नाटक कर साढ़े छः मास की सजा दी गई।

16. सत्याग्रह में आर्यसमाज की विजय :–

यह सत्याग्रह लगभग 6 मास तक खूब उत्साह से चला। भारत के सब प्रदेशों –विशेषतः उत्तर भारत से – हज़ारों स्वयंसेवक रेल व अन्य साधनों द्वारा सत्याग्रह करते रहे। स्वामीजी के बाद 6 सर्वाधिकारी नियुक्त हो चुके थे। हैदराबाद के जेलखाने भर गये। रियासत के अधिकारी घबरा गये। लगभग एक दर्जन सत्याग्रहियों का जेल में दुर्व्यवहार के कारण बलिदान हो गया। अन्ततः अगस्त मास में समझौते की वार्ता के परिणामस्वरूप स्वामीजी तथा अन्य सब सर्वाधिकारी तथा सत्याग्रही मुक्त कर दिये गये। रियासत की ओर से सबको वापसी रेल किराया दिया गया। अगस्त 1939 ई० के अंत तक यह धर्म-युद्ध विजय के साथ समाप्त हुआ। स्वामीजी का इस विजय-प्राप्ति में प्रशंसनीय नेतृत्व था।

30.8.1939 ई० को स्वामीजी हैदराबाद सत्याग्रह में आर्यसमाज के सिर पर विजय का सेहरा बंधा और साथ ही विशेषतः पंजाब और संयुक्त प्रांत के आर्यसमाजों के प्रति उनके इस सत्याग्रह में भाग लेने के लिए सद्भावना प्रकट करने तथा जनता द्वारा

स्थान-स्थान पर अभिनंदन प्राप्त करने के पश्चात् श्री स्वामी जी 30 अगस्त को वापस रामगढ़ आश्रम में पहुँच गये। स्वामीजी के नेतृत्व और आर्यसमाज की इस विजय की स्मृति में रामगढ़ ग्राम और आस-पास के ग्रामवासियों ने रामगढ़ में 'नारायण स्वामी हाई स्कूल, रामगढ़' की स्थापना की। 3 से 10 जून 1945 ई० तक सार्वदेशिक सभा की ओर से स्वामीजी के अभिनन्दन तथा उनकी हीरक जयन्ती मनाने के लिए रामगढ़ नारायण आश्रम में विशेष समारोह का आयोजन किया गया। महायज्ञ के अतिरिक्त इस अवसर पर कई सम्मेलन हुए और देश भर के प्रमुख आर्य नर-नारी भारी संख्या में अपनी शुभकामनाएँ प्रकट करने के लिए वहाँ उपस्थित थे। इस अवसर पर एक 'अभिनंदन ग्रंथ' भी स्वामीजी की सेवा में समर्पित किया गया। आर्यसमाज के हित और सार्वदेशिक सभा को गृह कलह से बचाने के लिए स्वामीजी ने 1941 ई० और 1945 ई० से 1947 ई० तक पुनः सभा का प्रधान पद स्वीकार किया।

17. सिंध में सत्याग्रह :–

1944 ई० में सिन्ध की मुस्लिम लीगी सरकार ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के 14वें समुल्लास को गैरकानूनी घोषित कर दिया। आर्य जगत् में इससे अत्यंत विरोध और क्षोभ पैदा हो गया। सार्वदेशिक सभा ने वैध उपायों द्वारा इसका निराकरण करना चाहा। परन्तु सब उपाय व्यर्थ होते देख, तब सभा ने अपने 1.11.1946 ई० के अधिवेशन में सत्याग्रह का निश्चय किया और स्वामीजी को सर्वाधिकारी नियुक्त किया। 3.1.1947 ई० को कराची में स्वामीजी अपने 4 सहयोगियों के साथ सत्याग्रह के लिए पहुँच गये। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया और साथ ही सब जिलाधीशों को आदेश दिया कि सत्यार्थप्रकाश रखने, पढ़ने, प्रवचन करने आदि के लिए किसी को गिरफ्तार न किया जाए। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबंध समाप्त हो गया।

18. भयंकर रोग : ऑपरेशन :–

स्वामीजी का स्वास्थ्य इन जेल-यात्राओं तथा सतत प्रचार और

आन्दोलनों की भागदौड़ से काफी खराब हो गया था। पेट में कैंसर का फोड़ा हो गया। सिवाय ऑपरेशन के कोई इलाज नहीं था। म० कृष्णजी की प्रेरणा पर स्वामीजी को लाहौर लाया गया। पेट का आपरेशन कर दिया गया पर स्वास्थ्य निरन्तर गिरता गया। फिर स्वामीजी के परमभक्त डा० श्यामस्वरूप उन्हें बरेली ले आये। उनका इलाज चलता रहा, परन्तु अवस्था निरन्तर गिरती गई।

19. महाप्राण :–

अंततोगत्वा 15.10.1947 ई० को बरेली में इस निष्काम कर्मयोगी एवं अनन्य ऋषि-भक्त का महाप्रयाण हो गया। इस प्रकार आर्य समाज का चिरकाल तक जाज्वल्यमान भानु अस्त हो गया जो लगभग 60 वर्षों तक अहर्निश अपनी अद्‌भुत आभा से समूचे मानव-समाज और विशेष रूप से आर्यसमाज को अपनी अद्‌भुत आभा से दैदीप्यमान करता रहा। सारे आर्यजगत् में शोक की लहर फैल गई। आर्य जगत् के अनेक व्यक्ति अपने प्रिय पथ-प्रदर्शक के अंतिम दर्शनों के लिये बरेली पहुँचे। वहीं पूर्ण वैदिक रीति से उनका अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया गया। इनके विषय में डॉ० सहदेव वर्मा जी लिखते हैं –

एक ऐसा व्यक्ति जिसे पारिवारिक वैभव प्राप्त न हुआ हो। जिसे उच्च शिक्षा भी न मिली हो, वह केवल अपने चरित्र बल, ईमानदारी और परिश्रम के कारण ही उस पद पर प्रतिष्ठित हो गया। महात्मा नारायण स्वामी स्वनिर्मित महापुरुष थे। वे सदाचार तथा पवित्रता के साक्षात् उदाहरण थे। वे सत्यव्रती, धर्मात्मा, कर्मनिष्ठ तथा त्यागमूर्ति थे। उनका जीवन कठोर तपस्या दृढ़ता एवं कर्तव्य परायणता का साक्षात् प्रतीक था।

–महात्मा नारायण स्वामी पृ० 126

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी

9. स्वामी स्वतंत्रानंद

1. जन्म, शिक्षा आदि :–

पौष पूर्णिमा संवत् 1934 वि० को लुधियाना (पंजाब) के निकट भोही ग्राम में सिख परिवार भगवानसिंह सूबेदार के घर में स्वामीजी का जन्म हुआ। बचपन का नाम केहरसिंह था। जालन्धर छावनी मिडिल तक शिक्षा प्राप्त कर बचपन में ही विवाहित हो गये, परन्तु पत्नी का देहान्त शीघ्र ही हो गया। 15 वर्ष की आयु में जी गांव के पास उदासी साधुओं के डेरे में आने-जाने और वहाँ एक विद्वान् पं० बिशनदास साधु की संगत से इनके हृदय में वैराग्य के भाव जाग्रत हो गये। यह पंडित आर्य समाजी विचारों के थे। केहरसिंह उनसे प्रभावित हो चुपचाप घर से निकल कलकत्ता, रंगून, मलाया आदि स्थानों का भ्रमण कर 23 वर्ष की आयु में जिला फिरोज़पुर के परवखड़ गाँव पहुँचे। इस गाँव के एक साधु स्वामी पूर्णानंद से संन्यास ले ''प्राण पुरी'' नाम ग्रहण किया। पं० बिशनदास से मिलने पर उन्होंने संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा की। तब ये अमृतसर में उदासी साधु पं० स्वरूपदास से पढ़ते रहे। फिर कुरुक्षेत्र सूर्य-ग्रहण के मेले में साधुओं के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़े। उस समय ये केवल कौपीन धारण कर, ऊपर चादर ओढ़ते और अपने एक हाथ में सदा बालटी रखते। उस समय ये 'बालटी वाले साधु' के नाम से विख्यात हो गये।

2. एक छोटी सी घटना से जीवन में क्रांति :–

गुरुकुल से प्रथम स्नातक सन् 1912-13 में हरिश्चन्द्रजी और इन्द्रजी निकले थे। ये दोनों सगे भाई महात्मा मुंशीरामजी, आचार्य गुरुकुल के सुपुत्र थे। ''गुरुकुल से कणाद, जैमिनी, पतंजलि सदृश ऋषि-मुनि निकलेंगे, गुरुकुल ही देश में सतयुग और महाभारत युद्ध के पश्चात् स्वर्णकाल का प्रवर्तक होगा'' आदि गगनभेदी ध्वनियाँ

जनता – विशेषतः आर्य जनता के कानों में कई वर्षों से उँडेली जा रही थी। इसलिए गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर संसार में प्रवेश करने को समुद्यत प्रथम स्नातक-द्वय के दीक्षान्त महोत्सव को देखने के लिए आर्य जनता में अपार उत्सुकता-मिश्रित उत्साह था। महात्माजी और गुरुकुल के प्रबन्धकों ने मंच पर अनावश्यक भीड़ के नियंत्रण के प्रवेश-पत्र जारी किए थे। स्वयंसेवक बड़ी कड़ाई के साथ मंच पर केवल प्रवेश-पत्र वालों को ही आने देते थे।

स्वामी स्वतंत्रानंद जी संभवतः साधु होने के नाते इस मंच पर बैठने का अपना स्वतः सिद्ध अधिकार समझते थे। स्थूल और बलिष्ठ शरीर के साथ स्वयंसेवक को हल्का-सा धक्का दे जब वे मंच की ओर बढ़े तब दो तीन स्वयंसेवकों ने तत्काल उन्हें रोक दिया। उनमें से किसी एक के मुख से अनायास ही ये शब्द निकल पड़े, ''बस गेरुए कपड़े पहनकर समझते हैं कि हम जहाँ चाहे बैठ सकते हैं और कुछ धक्का सा देकर वहाँ से हटा दिया। इस छोटी-सी अपमानजन घटना ने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी। उन्होंने अपने हृदय में दृढ़ संकल्प किया कि ''अब मैं योग्य बनकर ही मंच पर बैठने का अधिकार प्राप्त करूँगा''। सचमुच स्वामी स्वतंत्रानंद जी ने अपने इस संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए तत्काल ही पग उठाये। वे काशी गये और वहाँ कई वर्षों तक दत्तचित्त हो संस्कृत और शास्त्रों का अध्ययन किया। वैदिक वाङ्मय और महर्षि दयानंद के ग्रंथों का अध्ययन उनका चंचुपात मात्र न होकर तलस्पर्शी था। स्मृति ग्रंथों और श्रोतसूत्रों में तो वे विशेष निपुण हो गये थे। अपनी इस अनौखी योग्यता के परिणामस्वरूप ही जब गुरुदत्त भवन लाहौर में आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की ओर उपदेशक महाविद्यालय खोला गया, तब उसका आचार्य पद स्वीकार करने के लिए सभा ने आप से ही प्रार्थना की।

3. कठोर तपोमय जीवन : स्वादेन्द्रिय पर संयम :–

अपने शरीर की अत्याधिक स्थूलता दूर करने के लिए स्वामीजी ने जिस कठोर तपोमय जीवन का अवलम्बन किया, उन्हें आजन्म निभाया । आपने अपने आहार-विहार और भोजन-छादन के कुछ नियम स्थिर किये और अनेक प्रकार के प्रलोभनों के मध्य उनका कठोरता से पालन किया । जैसे, थाली में जितना भोजन गृहस्थ पहले दे, चाहे वह अत्यन्त कम भी हो, उतना ही खाना । दोबारा नहीं मांगना । अगर पहली बार ही थाली में भोजन की मात्रा अधिक हो तो उसे तत्काल अपने नियमानुसार पहले ही निकालकर कम कर देना । थाली में यदि दाल-सब्जी, मिष्ठान्न, दही आदि अनेक प्रकार के पदार्थ हों तो केवल एक ही वस्तु लेना, दूसरी नहीं और मिष्ठान्न का सर्वथा परित्याग । रात को भोजन नहीं, केवल आधा सेर दूध, बिना किसी अन्य सहायक पदार्थ के पीना । स्वामीजी ने अपनी स्वाद-इन्द्रिय पर इतना संयम किया हुआ था कि दीनानगर दयानंद मठ में आचार्य पद पर रहते हुए वे स्वयं नगर में भिक्षा करने जाते और एक ही भिक्षा पात्र में जो कुछ मिलता–मीठा, नमकीन, रसेदार, उबला हुआ–उसी में ग्रहण करते । मठ में आकर उसे अन्य मठ-निवासियों में बाँटते और स्वयं अल्प मात्रा में ही ग्रहण करते । मिठाई, तली हुई अथवा कई चीजों को मिलाकर बने हुए भोज्यपदार्थों को ग्रहण न करते ।

4. अपिरग्रह के मूर्तरूप : –

वस्त्रों के संबंध में स्वामीजी के अपने नियम थे । ग्रीष्म ऋतु में वे केवल कौपीन धारण कर अपनी कुटिया में रहते । एक धोती के दो टुकड़े कर तहमत के रूप में वर्ष भर व्यवहार करते । कमीज वह एक ही रखते थे । गर्मियों में तो कमीज पहनते ही न थे, केवल सर्दियों में ही व्यवहार करते । गर्मियों में बिना किसी बिछौने–दरी व चादर आदि के– केवल लकड़ी के तख्तपोश पर सोते, सिरहाना कभी न

रखते, एक या दो ईंटों से ही सिरहाने का काम लेते । पैरों में कपड़े के जूते पहनते । अपरिग्रह के वे मूर्तिमान रूप थे ।

5. समय पालन में दृढ़ : अपने भाषण में समय की कटौती :–

आर्य समाजों के उत्सवों व प्रचार-यात्राओं में उपदेश, कथा, भाषण आदि के लिए स्वामीजी को प्रायः जाना पड़ता था । वहाँ भी उनका एक नियम था । संस्था की ओर से मुद्रित कार्यक्रम के अनुसार उसमें उल्लिखित समय से 10 मिनट पहले ही स्वामीजी पहुँच जाते । यह प्रायः देखा गया है कि संस्थाओं के अधिकारी कार्यक्रम में मुद्रित समय का पालन नहीं करते । किसी भजनीक को आध घंटे की जगह पौना घंटा दे दिया । व्याख्यान का प्रारम्भ देर से कराया, स्वामीजी का नियम था कि जितना समय निर्धारित कार्यक्रम से अधिक लिया गया है, उससे दुगुना समय अपने कार्यक्रम में से काटकर कुछ समय में ही अपना भाषण समाप्त कर देते । करौलबाग, दिल्ली आर्यसमाज के उत्सव पर एक बार इस नियम के अनुसार समय काटकर केवल 5 मिनट ही बचते थे । स्वामीजी जब मंच पर भाषण देने आये तब वे अपने इस नियम की घोषणा करके 5 मिनट में ही अपना वक्तव्य कहकर नीचे बैठ गये । सारी सभा में सन्नाटा छा गया और समाज के अधिकारियों को अपनी इस शिथिलता के लिए लज्जित होना पड़ा तथा स्वामीजी से क्षमा मांगनी पड़ी । समय का वे सदा दृढ़ता से पालन करते थे । उनकी दिनचर्या घड़ी की सुई की तरह नियमित और व्यवस्थित रूप से चलती थी । ऐसे समय-पालक व्यक्ति बहुत कम देखे गये हैं । प्रत्येक क्षण का सदुपयोग वे अपने दैनिक कार्यक्रम के अनुसार ही करते थे ।

6. कटु सत्य कहने का साहस : अत्यन्त कोमल हृदय : –

स्वामी जी स्वभाव से तनिक कठोर, परन्तु हृदय से कोमल थे । सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के दुःख-दर्द का निराकरण करने के लिए

सदा तैयार रहते थे। उनका एक यह भी स्वभाव था कि वे बोलते कम और सुनते अधिक थे। उनका संबंध आर्यसमाज की कई संस्थाओं और सभा-समितियों से था। वहाँ भी वे अल्पभाषी परन्तु बहुल श्रोता थे। जिस समय वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में वेद-प्रचार के अधिष्ठाता थे, तब सभा के उपदेशकों और भजनीकों के साथ उनका व्यवहार जहाँ उनकी असुविधाओं और दीर्घकालीन प्रचार-यात्राओं से उत्पन्न पारिवारिक कष्टों को दूर करने के लिए अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण होता, वहाँ वे प्रचारकों से भी कठोर कर्त्तव्य पालन की आशा रखते। यदि कोई अपने कार्यक्रम की पूर्ति में चूक जाता, तब वे दंड देने में तनिक भी संकोच न करते।

स्वामीजी में कुछ विशेष गुण थे। वे स्वभावतः निष्कपट, निश्छल और स्पष्टवक्ता थे। वे सत्य को मुंह पर कहने का साहस रखते थे, भले ही वह कटु हो। कभी-कभी उनकी यह सत्यप्रियता 'मुंहफटने' का रूप धारण कर लेती थी। स्वामीजी की इस विशेषता का ही यह परिणाम था कि उनके कोई 'भक्त' या 'शिष्य' नहीं थे। आर्य संन्यासियों में प्रायः सब के कुछ और 'भक्त' व 'भक्तनियां' हैं। कुछ ऐसे समृद्ध गृहस्थियों को अपनी मुट्ठी में इस प्रकार रखते है जिन्हें वे समय-समय पर अपनी सुविधाओं की पूर्ति के लिए दोहते रहते हैं। परन्तु स्वतंत्रानंद जी इस आदत से सर्वथा शून्य थे। इस प्रकार की स्पष्टवादिता के बावजूद स्वामीजी को कुछ 'समृद्ध भक्त' अनायास ही मिल गये थे, परन्तु वे उनसे संभवतः कभी भी वैयक्तिक लाभ नहीं उठाते थे। दयानंद मठ, दीनानगर के लिए अवश्य ही इनमें से कुछ ने आर्थिक सहायता दी थी।

7. काशी में अध्ययन : आर्यसमाज में प्रवेश : –

इस साधु-मंडल से अलग हो आप काशी संस्कृत पढ़ने चले गये और वहाँ लगभग 6 वर्ष तक पढ़ते रहे, इसके बाद पुनः यात्रा

करते हुए बम्बई पहुँचे और वहाँ एक जंगल में रहने लगे। उस समय आस-पास की जनता में ये 'सिद्ध बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। आप सदा मनुष्यों से दूर एकान्त में स्वतंत्र रूप में रहने के अभ्यासी थे, इसीलिए ये 'स्वतंत्रानंद' नाम से विख्यात हुए। यहाँ से पुनः पंजाब, मालवा-सीमाप्रांत, सिंध, जाम नगर, द्वारका, सोमनाथ, टंकारा, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि प्रदेशों की यात्रा करते हुए पंजाब वापस आ गये। पं० बिशनदास से जब भेंट हुई तो उन्होंने आर्य समाज में प्रवेश कर प्रचार द्वारा सेवा करने के लिए प्रवृत्त किया। जिला भटिण्डा की रामा मण्डी समाज में 6 मास तक रहकर उन्होंने जहाँ आर्यसमाज के साहित्य का स्वाध्याय किया वहाँ आस-पास के ग्रामों में प्रचार भी करने जाते रहे। इसके बाद लुधियाना को केन्द्र बना स्वामी जी ने 'वेद प्रचारिणी सभा' और पाठशाला का काम संभाला। यहीं महाशय कृष्ण से उनकी भेंट हुई और वे उन्हें लाहौर ले आये और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्त्वावधान में प्रचार का काम उन्हें सौंप दिया।

8. मारीशस : पूर्वी अफ्रीका की प्रचार-यात्रा :–

1901 ई० में स्वामीजी विदेश यात्रा के लिए कलकत्ता से दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों– मलाया, सिंगापुर, जावा-सुमात्रा, बोर्नियो, फिलिपाइन्स होते हुए 1904 ई० में भारत वापस आ गये। 1913 ई० में जब डा० चिरंजीव भारद्वाज मारीशस से वापस भारत आये तब महाशय कृष्ण के अनुरोध पर स्वामीजी 1916 ई० में मारीशस गये। वहाँ प्रचार करने के बाद 1917 ई० भारत वापस आए। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब की प्रार्थना पर स्वामीजी 1920 ई० में बर्मा गये। 1925 ई० में स्वामीजी सभा के वेद-प्रचार विभाग के अधिष्ठाता और दयानंद उपदेशक विद्यालय लाहौर के आचार्य बने। 1939 ई० से 1941 ई० तक आप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि

सभा के कार्यकर्ता प्रधान व उपप्रधान रहे ।

9. हैदराबाद सत्याग्रह के 'फील्डमार्शल' :–

इन्हीं दिनों हैदराबाद में आर्यसमाज की ओर से सत्याग्रह की घोषणा की गई । रियासत में सत्याग्रह के लिए विभिन्न मार्गों से प्रवेश करने और महाराष्ट्र, गुजरात-काठियावाड़ तथा दक्षिण भारत में आन्दोलन चलाने के लिए शोलापुर में केन्द्र-शिविर बनाया गया । स्वामी स्वतंत्रानंद जी इस समस्त विशाल आन्दोलन के और केन्द्र के संचालक थे, जबकि महात्मा नारायण स्वामीजी सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी नियुक्त हुए । इन्होंने भी स्वामीजी के आदेश से महाराष्ट्र और गुजरात-काठियावाड़ में लगातार 6 मास तक प्रचार किया । स्वामीजी ने इस देशव्यापी आन्दोलन का संचालन ऐसे सुचारू रूप से किया कि उस समय आर्य जनता ने इनका नाम 'फील्डमार्शल स्वामी स्वतंत्रानंद' सम्मानपूर्वक रखा । स्वामीजी और उनके साथ अन्य कार्यकर्ता भी सत्याग्रह के लिए उत्सुक थे पर सभा के अधिकारियों का यह निश्चय समुचित ही था कि अगर मूलभूत केन्द्रीय-शिविर की व्यवस्था बुद्धिमत्ता और दृढ़ता से न की गई तो सारा आन्दोलन ही विफल हो जाएगा । दूरदर्शिता के साथ स्वामीजी द्वारा संचालित इस सत्याग्रह-आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि छः मास में ही रियासत के अधिकारी घबरा गये । आर्यसमाज की शर्तों को मान्यता मिल जाने से सत्याग्रह समाप्त करना पड़ा ।

10. दयानंद मठ की स्थापना :–

1938 ई० में स्वामीजी ने दयानंद मठ की दीनानगर (गुरुदासपुर पंजाब) में स्थापना इस उद्देश्य से की कि यहाँ से प्रौढ व्यक्ति शिक्षित हों और संन्यासी बन वैदिक धर्म का प्रचार करें । यह मठ आज तक श्रेष्ठ कार्य कर रहा है । हरियाणा प्रदेश के अन्तर्गत मुस्लिम रियासत लोहारू के नवाब ने भी आर्यसमाज के प्रचार पर

रुकावट लगा दी थीं। हैदराबाद सत्याग्रह के पश्चात् स्वामीजी ने इस रियासत में सत्याग्रह किया। तत्काल रुकावटें दूर कर दी गई।

11. तीसरी विदेश प्रचार-यात्रा :

1947 ई० में देश विभाजन और स्वतंत्रता आदि के पश्चात् विदेश स्थित भारतीयों – विशेषतः आर्यपुरुषों – की माँग पर स्वामीजी ने पुनः 1949 ई० दीपमालिका के दिन पूर्वी अफ्रीका, मारीशस आदि विदेशों की यात्रा पर प्रस्थान किया। मारीशस के आर्यसमाजों में प्रबल फूट के कारण दो प्रतिनिधि सभाएँ बन गई थीं। स्वामीजी ने इस पारस्परिक फूट को दूरकर एक ही प्रतिनिधि सभा 'आर्य सभा' के नाम से संगठित कर दी। पूर्वी अफ्रीका से जंजीबार होते हुए एक वर्ष बाद 1950 ई० में आप भारत वापस आ गये। 31.10.1950 ई० को आपका आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली में भव्य स्वागत हुआ।

12. महाप्राण :–

आर्य सार्वदेशिक सभा ने गोहत्या विरोधी आन्दोलन 1952 ई० में चलाया जिसके सर्वाधिकारी स्वामीजी थे। इसी प्रसंग में आप बम्बई गये। वहाँ कैंसर रोग ने आ घेरा और फरवरी 1954 ई० में आपका वहीं निधन हो गया। आर्यसमाज के इस शिरोमणि संन्यासी के वियोग पर सारे आर्य जगत् में गहरा शोक छा गया।

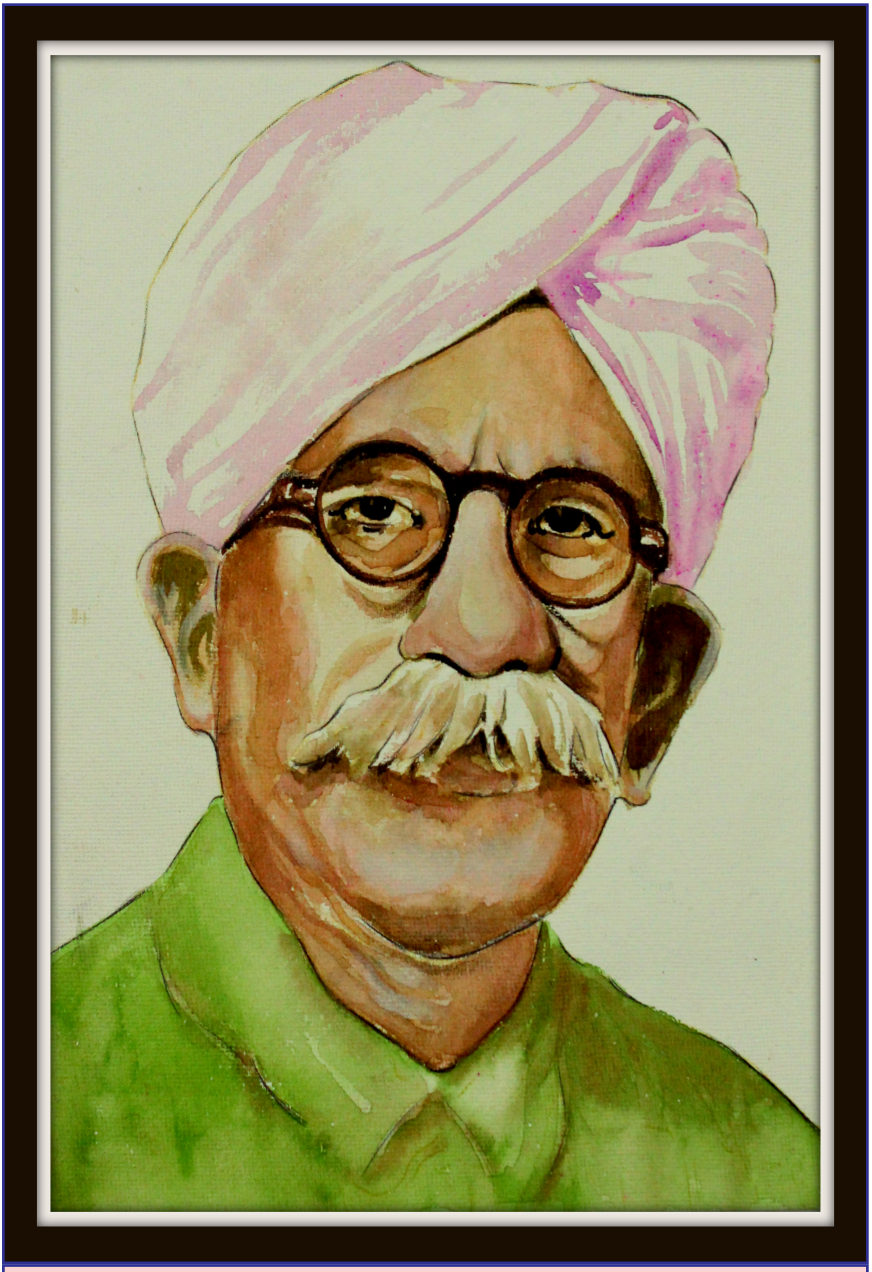

पंडित रामचन्द्र देहलवी

10. पंडित रामचन्द्र देहलवी

1. जन्म व बचपन :–

पंडित रामचन्द्र देहलवी जी के पिता जी का नाम मुन्शी छोटेलाल जी था। वे बड़े क्रोधी थे। वे अंग्रेज़ अफसरों को उर्दू व फारसी पढ़ाने जाया करते थे। आपके पिता धार्मिक विचारों से न पक्के सनातनी थे न आर्य। वे दोनों ही स्थानों (मन्दिर व आर्यसमाज) में जाया करते थे और कहा करते थे कि न जाने कहाँ से कुछ मिल जाये। पंडित जी की माता का नाम श्रीमती रामदेई था। ये मालवा में स्थित किसी भीलगांव में पैदा हुई थीं। भील लोगों के गाँव में रहने के कारण वे बड़ी निडर स्त्री थी। मुन्शी छोटे लाल जी के सबसे बड़े बेटे का नाम श्री शिवकरण जी था। ये देहलवी जी के सबसे बड़े भाई थे। पंडित जी का नम्बर अपने भाइयों में दूसरा था किन्तु इनसे पूर्व तीन बच्चे मर चुके थे। इनकी माता बच्चों की मृत्यु से बड़ी दुःखी थीं।

1881 ई० की रामनवमी को पंडित रामचन्द्र देहलवी जी का जन्म हुआ था। क्योंकि राम-नवमी को उनका जन्म हुआ, इसलिए प्रफुल्लित माता-पिता ने आपका नाम रामचन्द्र रख दिया। बड़े लाड़-प्यार से पंडित जी का पालन-पोषण प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे यह माँ का लाल शिशु से बच्चा बन गया। माँ का इन पर अत्यधिक प्रेम था। जब कभी मुन्शी जी पंडित जी को अपने स्वभाव की तेजी के कारण पीटना चाहते थे तो उनकी माता बलपूर्वक अपने पति को ऐसा करने से रोक देती थीं और कहती थीं कि ''मैं इसे हाथ नहीं लगाने दूंगी चाहे कुछ भी हो।'' पंडित जी के जन्म के पश्चात् दो भाई और उत्पन्न हुए जो श्री शिवलाल जी व श्री जियालाल जी के नाम से जाने जाते हैं।

पंडित जी की माता का निधन उनकी छोटी अवस्था में (लगभग 7 वर्ष की आयु में) ही हो गया था। सारे घर का भार पंडित

जी पर आ पड़ा था। उन्होंने इस छोटी अवस्था में ही लगभग 10 महीने तक अपने छोटे भाइयों को खाना बनाकर खिलाया था। देहलवी जी के पिता (मुन्शी छोटेलाल जी) ने फिर दूसरी शादी कर ली थी। देहलवी जी कहा करते थे–

लाडी (मौसी) अत्यंत सुशील व सुन्दर थी किन्तु मैंने कभी भी उन्हें मौसी कहकर नहीं पुकारा। मैं उन्हें हमेशा लाडी ही कहता था।

2. शिक्षा :–

पंडित जी घर के कार्य के साथ पढ़ाई का कार्य भी मन लगाकर किया करते थे। नीमच में ही एक प्राइमरी स्कूल था जिसमें वे पढ़ने जाया करते थे। प्रारम्भ से ही पंडित जी बड़े कुशाग्रबुद्धि थे। वे स्वयं सुनाया करते थे कि कक्षा में एक बालक और था जिसका नाम आबिद अली था। ये दो ही अपनी कक्षाओं में प्रथम व द्वितीय रहते थे। यहाँ पर पंडित जी ने अंग्रेज़ी के अध्ययन के साथ-साथ फ़ारसी के भी पहले पाठ पढ़े थे। आपने अजमेर के डी०ए०वी० स्कूल से आठवीं की परीक्षा पास की थी। उस परीक्षा में भी आप पहली श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। अपनी मुश्किल का बयान करते हुए उन्होंने लिखा है–

मैं अजमेर में अपने मित्र के घर में एक कोठरी में ठहरा था। प्रश्नपत्र देकर जब लौटता था तब अपने हाथ से खाना बनाता था और वे रोटियाँ दही से खाता था। कई दिन तक लगातार दही से रोटी खाने के कारण मुझे तेज बुखार हो गया किन्तु मैं फिर भी बुखार की अवस्था में ही परीक्षा में बैठता रहा।

जब आपने आठवीं की परीक्षा पास कर ली तब आपके पिता जी ने आगे पढ़ाने से इन्कार कर दिया और दुकानपर अपने साथ काम करने के लिए कहा। वे आगे पढ़ना चाहते थे, पिता पढ़ाने को तैयार न थे तो पंडित जी ने एक दिन रात को भाग जाने की योजना

बना ली। आपके बड़े भाई श्री शिवकरण जी नीमच के निकट ही कहीं रेलवे कर्मचारी थे। आपने उन्हीं के पास भाग जाने का निर्णय कर लिया। उस रास्ते में पड़ने वाले सभी रेलवे स्टेशनों के नाम आपने रट लिये ताकि अपने गन्तव्य स्थान से आगे न निकल जाएँ। फिर एक रात को दुकान से कुछ पैसे लेकर आप धीरे से भाग गये। गाड़ी में सवार हो गये। रात का समय था, गाड़ी में आपको नींद आ गई ; बच्चे तो थे ही। जब आँख खुली तो घबराहट में गाड़ी से नीचे उतरने चले। किन्तु स्टेशन का नाम पढ़कर वापस गाड़ी में ही रुक गये। आपको घर से भागने के शक में पकड़ लिया गया। पुलिस ने मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया किन्तु आपने निर्भीकतापूर्वक भाग जाने का खण्डन किया व कहा कि मैं अपने भाई के पास जा रहा हूँ। आपने अपना टिकट भी दिखा दिया। मजिस्ट्रेट आपके वार्तालाप से अत्यंत प्रभावित हुआ व उन्हें आगे जाने का अनुमति पत्र दे दिया। अपने बड़े भाई से मिलकर आपने आगे पढ़ने का प्रबन्ध करा लिया। इन्दौर कॉलेज से आपने दसवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। बस, स्कूली पढ़ाई का यहीं अन्त हो गया।

3. विवाह व धनोपार्जन : –

पंडित जी की (मौसी) लाडी उनके पिता जी से आयु में बहुत छोटी थी। इस कारण सन्तानोत्पत्ति के समय उन्हें कष्ट का सामना करना पड़ता था। इसी कष्ट के कारण उनकी मृत्यु तीसरे बच्चे की उत्पत्ति के समय हो गई थी। घर की व्यवस्था बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। घर की व्यवस्था ठीक करने का एक ही मार्ग था कि पंडित जी का विवाह कर दिया जाए और उनका विवाह 18 वर्ष की आयु में कर दिया गया। उनकी धर्मपत्नी का श्रीमती कमलादेवी था। वे दिल्ली की कन्या थीं। क्योंकि पंडित जी के ऊपर अब एक परिवार का उत्तरदायितव आ पड़ा था, इसलिये उन्होंने नीमच के उसी स्कूल में नौकरी कर ली जहाँ वे स्वयं पढ़े थे। बच्चे जैसा कि सभी जानते

है, नये अध्यापक की पूरी परीक्षा लेते हैं। उन्होंने इनको भी न छोड़ा।

वे इनसे नित नये-नये प्रश्न व समस्याएँ पूछते और वे अपनी प्रखर बुद्धि, अपार ज्ञान व आत्मविश्वास के आधार पर उनकी सभी समस्याओं का पूर्ण समाधान हँसते-हँसते कर देते थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे उन छात्रों में अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। धीरे-धीरे पारिवारिक समस्याओं का समाधान होने लगा। पंडित जी ने अपना वैवाहिक जीवन भी प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले उनकी संतान एक पुत्री हुई। राजस्थानी महिलाएँ अपने गृहकलह के लिए बड़ी प्रसिद्ध हैं। जली-कटी बातें, ताने-उलाहने, अदले-बदले, ये उनके शस्त्र हैं जो वे अपनी जाति के लिए बड़ी बेदर्दी से प्रयोग में लाती हैं। पंडित जी की कुछ निकटतम पारिवारिक-स्त्रियों ने जब पंडित जी की सहधर्मिणी के साथ भी उन्हीं ओछे हथियारों का प्रयोग किया और उन्हें इस बात का पता चल गया तो वे अपने परिवार समेत दिल्ली अपने श्वसुर के यहाँ चले आये।

दिल्ली आकर आपने रैली ब्रदर नामक एक इंग्लिशफर्म में 15 रुपये महीने की नौकरी कर ली। पं० जी प्रारम्भ से ही बड़े कर्मनिष्ठ व कर्त्तव्यपरायण थे। आपका हिन्दी व अंग्रेज़ी का लेख अत्यन्त सुन्दर था। इस कम्पनी का मालिक पं० जी के काम व लेख से अत्यंत प्रभावित था। वह इन्हें रविवार के दिन भी अपने कार्यालय में बुलाता था। एक बार किसी कार्यवश पं० जी उस अफसर के बुलाने पर कार्यालय में न जा सके। अगले दिन साहब ने अपने पास बुलाया व बुलाने पर न आने का कारण पूछा। पं० जी ने बड़ी निर्भीकता से कह दिया कि रविवार का दिन मेरी छुट्टी का दिन था, मुझे काम था, मैं नहीं आया। मैं तो मनुष्य हूँ ईश्वर ने भी सातवें दिन आराम किया था, मुझे भी सातवें दिन छुट्टी करने का अधिकार है। साहब इस उत्तर से बुरी तरह जल गया और बोला, मैं आपके खिलाफ कुछ करना चाहता हूँ लेकिन अब छोड़ो। स्वाभिमानी जैसे कि वे थे,

उन्होंने तुरन्त अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और अपने श्वसुर के साथ उनकी दुकान पर ही बैठकर अपना काम करने लग गए ।

ईमानदारी उनकी गज़ब की थी । उन्हें चीजें बनाने के लिए जो सोना मिलता था उसकी अलग-अलग पुड़ियाएँ बंधी रखी रहती थीं । यदि किसी सज्जन को अपना काम न बनवाना होता और वे अपना सोना वापस माँगते तो जब उन्हें वे वही पुड़िया और उतनी ही सोने की डलियाँ वापस मिलतीं जितनी उन्होंने दी थीं तो वे चकित रह जाते थे कि वैसी की वैसी पुड़िया रखी है । प्रायः नहीं तो इसका उसमें और उसका इसमें लोग कर देते हैं । अपने काम के वे निपुण थे । जो चीजें भी वे बनाते थे, मजबूती व पायदारी में लाजवाब होती थीं । उनके काम में बड़ी चुस्ती थी । सुस्ती से उन्हें बहुत घृणा थी । उनके पाँच बच्चे दिल्ली आकर और हुए थे । 4 लड़की व एक लड़का, जिनमें से एक लड़का तो अत्यन्त खूबसूरत था, बिल्कुल उनके जैसा, व तीन लड़कियों का निधन हो गया ।

उनको अपने बच्चों से बेहद प्यार था । वे कभी भी अपने घर में पुत्रियों के जन्म से विचलित नहीं हुए । वे सदा उनके जन्म पर अत्यंत प्रसन्न हुआ करते थे । पुत्र के जन्म पर वे खुश नहीं हुए थे अपितु यह कहा था कि इतना खूबसूरत बच्चा उनके परिवार में रहने योग्य नहीं है । उनका यह वाक्य सत्य सिद्ध हुआ । जन्म के अठारह दिन बाद उस की मृत्यु हो गई । पुत्र की मृत्यु का धक्का उनकी माता (कमला जी को) बड़ा जबरदस्त लगा । वे डेढ़ वर्ष तक बीमार रहीं । उस समय पंडित जी ने उनकी खूब सेवा की । पुत्रियों की मृत्यु पर वे धार-धार आँसू बहाते थे, बच्चों की तरह रोते थे । अपनी पुत्रियों पर ही नहीं, मुहल्ले में भी किसी बच्ची के मर जाने पर उन्हें बड़ा दुःख होता था । अन्तिम पुत्री के जन्म के समय उनकी धर्मपत्नी को इन्फ्लूएंजा हो गया था और वे उसी में प्रभु को प्यारी हो गईं । पंडित

जी ने उनकी सेवा प्राणपण से की किन्तु वे अपनी अर्द्धांगिनी को मृत्यु के क्रूर हाथों से न बचा पाए ।

4. पुनर्विवाह :–

अपनी धर्मपत्नी के शव पर हाथ रखकर उन्होंने कसम खाई थी कि देवी जिस दृष्टि से मैंने तुम्हें देखा है अब वह दृष्टि और किसी शरीर पर नहीं पड़ेगी । यह रिश्ता अब दुनियाँ में तुम्हारे शरीर के साथ समाप्त हो गया । अब तो केवल माँ, बहिन और बेटी के रिश्ते ही मेरे लिए दुनियाँ में होंगे । पंडित जी की आयु इस समय केवल 36 वर्ष की थी । धार्मिक क्षेत्र में पदार्पण के कारण आपकी ख्याति बड़ी दूर तक फैल चुकी थी । स्वयं अपने हाथ से कई लड़कियों ने जो अत्यन्त रूपवती, गुणवती व सर्व ऐश्वर्य-सम्पन्न थीं, पंडित जी के साथ अपने विवाह के लिए पत्र लिखे किन्तु वे अपनी प्रतिज्ञा पर चट्टान की तरह अडिग रहे । उन्होंने बेटी से संबोधित किया और किसी भी भाँति अपने निश्चय से न टले । हालाँकि पुनर्विवाह करने के समर्थन में उनके पास यह आड़ थी कि उनके कोई पुत्र नहीं है ।

5. आर्थिक अवस्था :–

पंडित जी की आर्थिक अवस्था कभी भी अच्छी न रही । एक बार तो उनके घर में ऐसा समय भी आया कि जब किसी अन्य धर्मावलम्बी थानेदार ने उनके घर में चोरी करवा दी थी और उन्हें शाक के पैसे जुटाने के लिए घर में रखी अख़बार की रद्दी बेचनी पड़ी, तब कहीं खाना बना । इसके पश्चात् उन पर ऐसा भी समय आया, जब वे दो समय भरपेट भोजन भी न कर पाते थे । प्रातः घर से एक लड्डू खाकर व आधा सेर दूध पीकर निकलते थे व सारे दिन भूखे रहकर दुकान पर काम करते थे, शाम को ही आकर खाना खाते थे । इन सब मुश्किलों के होते हुए भी वह धर्म-प्रचार के लिए जब कहीं

जाते थे तो किराया अपनी जेब से खर्चते थे । यह उन्होंने तब ही बंद किया जबकि कई संन्यासी-महात्माओं ने उनसे ऐसा न करने का प्रस्ताव किया व उन पर अपना दबाव डाला ।

6. धार्मिक क्षेत्र में पदार्पण :–

पंडित जी अपने इस कष्टमय पारिवारिक जीवन से जरा भी परेशान न हुए और अपने इन अत्यंत मुश्किलों के दिनों में भी धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में लगे रहे । इस अध्ययन में ईश्वर ने विघ्न डालना चाहा । नहीं-नहीं, विघ्न डालना नहीं अपितु उन्हें आजमाना चाहा, उनके पथ से उन्हें विचलित करना चाहा । लगातार छः महीने तक उनकी आँख दुःखती रहीं परन्तु उन्होंने अपना अध्ययन छोड़ा नहीं । स्वयं अपनी आँखों पर पट्टी बांधे बैठे रहते थे व अपने साले साहब से उन पुस्तकों को पढ़वाते रहते थे । यूँ उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा ।

दिल्ली के फ़व्वारे पर सप्ताह में दो दिन मुसलमान साहबान व दो दिन ईसाई साहबान अपने धर्म का प्रचार किया करते थे । यूँ सप्ताह के दो दिन अभी भी खाली पड़े थे । पंडित देहलवी जी उन व्याख्यानों को रोज़ सुनने के लिए जाया करते थे । वहाँ हिन्दू धर्म पर किये जाने वाले बेसिर-पैर के घातक हमलों को उन्होंने सुना । उन्हें सुनकर वे तड़प उठे । अपने मन में उन्होंने कहा–'अरे तेरे स्वाध्याय का क्या लाभ ! यह तो बेकार जा रहा है !'' इस ख्याल ने उन्हें बेचैन कर दिया । उन्होंने पुलिस को सूचना दे दी; उनसे आज्ञा नहीं माँगी कि सप्ताह के दो दिनों में वे व्याख्यान देंगे । जिस रात उन्होंने अगले दिन व्याख्यान देने का निश्चय किया था उस रात वे चैन से सो न सके । उनकी धर्मपत्नी जी उस समय तक जिन्दा थी, उनकी बेचैनी को भांप गई । उन्होंने पंडित जी से उनकी परेशानी का कारण पूछा ।

पंडित जी ने उनको भी अपना निर्णय बता दिया। वे बेचारी भोली-भाली देवी इस निर्णय का अर्थ न समझ सकीं किन्तु वे उनके प्रयत्न में सहायक आवश्यक रहीं। अगले दिन पंडित जी ने फव्वारे पर अपना पहला व्याख्यान दिया। व्याख्यान से पूर्व आधा घंटा भजन भी गाया करते थे। बस, यह सिलसिला चालू हो गया। पंडित जी रोज ट्राम में बैठ कर फव्वारे पर आते थे।

ईसाई व मुसलमान साहबान के आक्षेपों को अंग्रेज़ी भाषा में नोट करके लाते थे व अपनी बारी के दिनों में उनका उत्तर दिया करते थे। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती गई और उन दोनों साहबानों की महफिल उजड़ती गई। आखिर उन लोगों ने अपनी बेढब की बहस बंद कर दी, बंद स्वयं नहीं की किन्तु उन्हें वह बंद करनी पड़ी क्योंकि उन्हें अब कोई सुनता ही नहीं था। पंडित जी के व्याख्यानों में भीड़ इतनी बढ़ गई कि चांदनी चौक का आवागमन ठप्प होने लगा इसलिए पुलिस ने अब व्याख्यानों के लिए गाँधी ग्राउंड में स्थान दे दिया। यह व्याख्यानों का कार्यक्रम सप्ताह के छः दिनों तक फव्वारे व गाँधी ग्राउंड में पूरे पंद्रह वर्ष तक चलता रहा (सन् 1910 से 1925 तक)। कमाल की बात यह है कि इस लम्बी अवधि में व्याख्यानों के क्रम में एक भी नागा नहीं है जब कि उनके पुत्र व उनकी कर्त्तव्यपरायण धर्मपत्नी की मृत्यु भी व्याख्यान के दिनों में ही हुई थी। इस काल में पंडित जी की तार्किक शैली, अनुपम कार्य-प्रणाली का बोल-बाला सारे भारत में हो गया। भारत के सभी कोनों से आपके पास धर्म-प्रचारार्थ बुलावे आने लगे। आपने देश व समय की पुकार को दृष्टि में रख कर धर्म-प्रचारार्थ जाना प्रारम्भ कर दिया।

7. क़ुरान व बाइबल का अध्ययन : –

पंडित जी ने फव्वारे पर व्याख्यान देने के दिनों में अपने धर्म के अध्ययन के साथ-साथ क़ुरान व बाइबल का भी अध्ययन किया

था। क़ुरान पढ़ने की कहानी बड़ी दिलचस्प है। पंडित जी ने जब अपने श्वसुर के सामने क़ुरान पढ़ने की इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने अपने एक परिचित हाफ़िज जी से उनकी मुलाक़ात करवा दी। वे हाफिज जी लूले थे तथा दिल्ली के रहने वाले थे। हाफ़िज जी ने पंडित जी से क़ुरान पढ़ने का कारण पूछा तो उन्होंने उन्हें उत्तर दिया कि हक की तलाश के लिए, सच्चाई की तलाश के लिए मैं क़ुरान पढ़ना चाहता हूँ। हाफ़िज जी यह उत्तर सुनकर बड़े खुश हुए व क़ुरान पढ़ाना स्वीकार कर लिया। उन्हें छिपकर पढ़ाते थे। पंडित जी हाफ़िज जी को अपनी गोद में उठाकर उनके घर से अपने घर लाते थे व पढ़ चुकने के बाद उनके घर गोद में उठाकर पहुँचाते थे। पंडित जी ने उनका नाम कभी नहीं पूछा क्योंकि वे जानते थे कि ऐसा करने से उन पर कभी भी कोई आपत्ति आ सकती थी। क्योंकि मुसलमान साहिबान क़ाफिर को क़लमा सिखाने के हक में नहीं थे।

कई बार ऐसा हुआ भी कि मोमिनों ने किसी हाफ़िज को शक में पकड़ लिया व उससे ईमान धर्म उठवाया कि बताओ तुम ही देहलवी को क़ुरान पढ़ाते हो। जब उसने धर्म व ईमान की क़सम खाई तब कहीं उसे छोड़ा। पंडित जी ने इन हाफ़िज जी से पूरे दो महीने में क़ुरान पढ़ लिया था। इनके उस्ताद हाफ़िज जी पंडित जी के आयत पढ़ने पर अत्यंत प्रसन्न हुआ करते थे। वे कहा करते थे कि मुझे बड़े शिष्य मिले किन्तु तुम जैसा सच्चा व सही तलफ़्फ़ूज वाला नहीं मिला। उन्होंने पंडित जी का पहला मुबाहिसा जो बाड़ा हिन्दूराव में हुआ था उसे छिपकर सुना था व उनकी बाँछें खिल गई थीं ; उनका दिल बाग़-बाग़ हो उठा था क़ुरान की आयतें सुनकर। पंडित जी ने क़ुरान पढ़ने पर केवल दस रुपये खर्च किये थे।

बाइबल का अध्ययन उन्होंने स्वयंकिया था। उनके पुस्तकालय में बाइबल की अनेक प्रतियाँ हिन्दी व अंग्रेज़ी में विद्यमान

थीं। उन सबमें से उन्होंने खूब अध्ययन किया था। मौलवी कहा करते थे–

अगर तुमने क़ुरान की आयतों को सही ढंग से पढ़ने और बोलने का इल्म सीखना हो तो पंडित रामचन्द्र देहलवी से सीखो। वह हिन्दू होकर भी ऐसा शुद्ध बोलता है कि कई बार हम लोगों को भी हैरान होना पड़ता है।

8. पंडित रामचन्द्र और शास्त्रार्थ :–

देहलवी जी शास्त्रार्थ कला में अद्वितीय थे। मुज्फ्फरनगर में शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। मुसलमान साहबान मुकाबले में थे। विपक्षियों की ओर से यह प्रस्ताव आया कि एक जज इस शास्त्रार्थ की हार-जीत के फैसले के लिए निश्चित् किया जाना चाहिए। पंडित जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा जज चुनने का काम भी विरोधियों को ही सौंप दिया गया। वे अगले दिन अपने ही एक रेवरेंड जुडाह साहब को जज बनाकर ले आए। वे मुसलमान साहब के साथ ही बैठ गये। पंडित जी से जब यह कहा गया कि जज महोदय जुडाह पधार गये हैं और मुसलमान साहब के पास बैठे हैं तो पंडित जी ने एक चुटकी ली, एक मीठी चुटकी, जैसा कि वे समयानुसार प्रायः किया करते थे। उन्होंने कहा –

जनाब जुडाह साहब, आप तो अभी से एक ओर झुकने लगे जितने आप उनके हैं उतने मेरे भी तो हैं, आपको तो बीच में बैठना चाहिए।

रेवेरेंड जुडाह ने अपनी भूल स्वीकार की व मध्य में आकर बैठ गए। इसके पश्चात् दोनों साहबान से जुडाह साहब ने इस आशय के काग़ज़ पर हस्ताक्षर करवाए कि वे दोनों पक्ष उन्हें जज स्वीकार करते हैं व दोनों ही पक्षों को दिया गया निर्णय स्वीकार होगा।

दृश्य देखने योग्य था। अपार भीड़ थी। जिधर देखिये, उधर सिर ही सिर नज़र आते थे। एक अज़ीब खलबली-सी मची हुई थी। लोग प्रतीक्षा में थे कि उत्तर-प्रत्युत्तर होंगे। आखिर वह घड़ी आ ही गई। फुसफुसाहट बंद हो गई। जैसे शेर अपने शिकार को देखकर प्रसन्न होता है और उसे सामने देखकर फूला नहीं समाता, यही हाल पंडित जी का था। वह अपने विरोधी की चालों की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब यह वार करे और कब मैं इसकी चालों को नाकामयाब करूँ। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, पहले विरोधी को आक्षेप करने का समय दिया गया। जो भी आक्षेप किए गए, उनका तर्कयुक्त प्रबल उत्तर दिया गया जो क़ुरान, वेदों के संदर्भ वाक्यों से सजे व सबल थे। पंडित जी को अपने मुकाबले में आए हुए के ज्ञान की थाह मिल गई। अब पण्डित जी की बारी आई। उन्होंने अपने प्रश्नों की बौछार से उस मौलाना की रूह बिगाड़ दी। वे बेचारे घबरा कर उखड़ गए। प्रश्नों का उत्तर दे न सके? न कोई उद्धरण दे सके। अब बारी थी रेवरेण्ड जुडाह साहब की। इससे पहले कि वे अपना निर्णय दें, जनसमूह अपना निर्णय दे चुका था। उनमें एक अजीब-सी हलचल थी, रोमांच था, उत्सुकता थी। वे जज का निर्णय भी सुनना चाहते थे।

बोलना शुरू किया, मैंने शास्त्रार्थ सुना, मेरे आर्य पंडित ने जिस खूबी से अपना पक्ष प्रस्तुत किया, क्या खूब था वह! आयतों की उसमें भरमार थी। बड़े अच्छे ढंग से उन्होंने उत्तर दिये । मेरे मुसलमान भाई तो नमूने के तौर पर भी एक आयत न पढ़ सके। मैं निर्णय देता हूँ, आर्य जीत गए व मुसलमान हार गए। लोगों ने टोपियाँ उछालीं, कुर्सियाँ उछालीं। लोगों ने पंडित जी को अपने सिरों पर उठा लिया। मारे खुशी के लोग दीवाने हो गए। मैं समझता हूँ पंडित जी भी उस दिन अवश्य अपनी जीत पर मन ही मन प्रसन्न हुए

होंगे। इस जीत की खुशी में पंडित जी को एक सोने का पदक किसी धार्मिक ने भेंट किया।

एक बार पंडित जी फिरोजपुर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेने गए तो वहाँ भी अखाड़ा जमा। शास्त्रार्थ को सुनने वालों में एक पठान नवयुवती भी थी जो 'अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय' में पढ़ती थी। पंडित जी क़ुरान की आयतें ऐसे अच्छे व सही ढंग से पढ़ते थे कि बड़े-बड़े हाफ़िज व मौलवी भी दाँतों तले अँगुली दबाते थे। यह पठान लड़की भी पंडित जी की वाणी से अत्यंत प्रभावित हुई। उसे उनका आयतें पढ़ना बेहद पसंद आया और उसने वहाँ के मंत्री को दस रुपये का नोट दिया और कहा –''साडे मौलवी पंडित नू ए दस रुपये मेरे वल्लों देईं।''

पंडित जी हँसते-हँसते यह घटना सुनाने के बाद कहा करते थे कि मुझे अरबी पढ़ने की फ़ीस मुसलमान साहब ने ही दी। मैंने अपनी जेब से कुछ खर्च नहीं किया। आपको याद होगा कि पंडित जी ने क़ुरान पढ़ने के लिए हाफ़िज को दस रुपये ही दिये थे।

9. जब पंडित जी ने मौलवी को कान पकड़वाए :–

यह घटना इस प्रकार है कि आयत पढ़ने में कहीं ज़बर व ज़ेर के ऊपर विवाद खड़ा हो गया। पंडित जी ने विवाद की समाप्ति क़ुरान जो उनके पास ही थी खोल कर दिखा दी। मौलाना ने अपनी भूल स्वीकार की और अपने कान भरी सभा में पकड़े। लोगों ने उस सभा में शोर मचा दिया और कहा कि पंडित जी ने मौलाना के कान पकड़वा दिये।

10. तूफ़ानी आदमी : –

पंडित जी काम करने में शैतान को भी मात देते थे। उनके स्वभाव में प्रत्येक कार्य को आवश्यकता व समयानुसार चटपट करने की आदत थी। अपने साधारण कार्यों में जहाँ उनको जल्दी रहती थी,

वहाँ उन्होंने अपना प्रचार कार्य भी इसी धुंआधार गति से किया था। न रात का फ़िकर था न दिनका। धूप-छाया से उन्हें क्या मतलब था! भूखे हों या प्यासे, वे इन सब छोटी-छोटी बातों की परवाह कभी भी नहीं करते थे। आप उनके प्रचार की गति का अनुमान इससे लगा सकते हैं कि उन्होंने अकेले हैदराबाद में 7 बार में 125 व्याख्यान दिये थे। बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त कर लेना मात्र ही विद्वत्ता नहीं है। यह तो अक्षर ज्ञान है। वस्तुतः विद्या तो स्वाध्याय, आत्मचिन्तन और शास्त्रों के गहन मंथन, विद्वत्समाज के सत्संग विचार-विमर्श से प्राप्त होती है।

11. सत्याग्रह का नेतृत्व : –

जहाँ पंडित जी ने आर्यसमाज के क्षेत्र में धार्मिक प्रचार स्वतंत्र रूप से किया, वहाँ उन्होंने इस संस्था द्वारा प्रत्येक आन्दोलन में सैनिक की भाँति काम किया। वे वहाँ सेनानी नहीं बने हालाँकि वे चाहते तो ऐसा कर सकते थे। आर्यसमाज द्वारा कैरोंशाही के खिलाफ़ हिन्दी आंदोलन छेड़ने पर वे उस आग में कूद पड़े थे और एक बड़ा जत्था लेकर वे पंजाब में सत्याग्रह के लिए गये थे।

12. शानदार जीवन और सादा जीवन :–

वह अत्यंत सादा जीवन बिताते थे। खाने-पीने के संबंध में बड़े संतुलन से काम लेते थे। घर में वे प्रातः प्रायः केवल एक दाल व रोटी खाते थे ; सायंकाल केवल एक शाक व रोटी से अपना पेट भर लेते। वे पूर्णतः शाकाहारी थे। भोजन उनका पूर्णतः साात्विक था। घर में प्याज तक भी नहीं खाई जाती थी। चाय, पान-बीड़ी-सिगरेट से वे बहुत दूर थे। सिनेमा उन्होंने अपने जीवन में कभी देखा नहीं था। कपड़े बड़े सादा किन्तु अपने हाथ से घुले अत्यंत साफ़ सुथरे पहनते थे। केवल शेरवानी पर ही लोहा करवाते थे। स्वभाव से वे अत्यंत सादा व शांत थे किन्तु झूठ व चक्करदार बातें उनके जज्बे को भड़का देती थी। कुपित हो जाने पर वे दोषी व्यक्ति को पूरी तरह

दण्डित किये बगैर छोड़ते नहीं थे। मन के वे कोमल भी बहुत थे। दोषी व्यक्ति यदि अपनी भूल को उनके सामने सच्चे मन से स्वीकार कर लेता था तो वे पानी-पानी हो जाते थे और उसको तुरन्त क्षमा कर देते थे।

वे बड़े दूरदर्शी व गम्भीर विचारक थे। समस्या के हर पहलू पर भली प्रकार विचार करने के बाद वे कोई निर्णय लेते थे और फिर निर्णय लेने के बाद बदलते नहीं थे, चाहे कुछ भी हो। बच्चों को अत्यंत प्यार करते थे। वे अपने बच्चों की मुरझाई शक्ल कभी भी देख नहीं सकते थे। वे बच्चों के दुःख से स्वयं ज्यादा दुःखी हो जाते थे। उनका दुःख दूर करने के लिए वे कुछ भी उठा न रखते थे। सेवा करना, जो कहना बड़ा आसान है, करना बड़ा मुश्किल है, उसमें वे सिद्धहस्त थे। किसी भी प्रकार की गंदगी साफ करने के कार्य से वे घृणा नहीं करते थे। उन्हें जहाँ भी मौका मिला, उन्होंने सेवा में कसर नहीं की। वे कहा करते थे कि—हमारा कर्त्तव्य है कि अवसर मिलने पर हम सेवा करें।

13. धार्मिक क्षेत्र में अपूर्व सफलता का राज :—

यूँ तो पंडित जी से अधिक पढ़े-लिखे व वेदों के कई गुणा अधिक विद्वान् आर्यसमाज में थे किन्तु उन लोगों का क्यों इतना सम्मान जनसाधारण में नहीं है यह बात कई बार विचारी है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पंडित जी में निम्न विशेषताएँ थीं जिनके कारण वे अत्यंत लोकप्रिय हुए—

(1) सभी सिद्धान्तों का गम्भीर व सही अध्ययन।

(2) अपने समझे हुए सिद्धान्तों को जनसाधारण तक उनके बुद्धि-स्तर के अनुसार ही उनकी भाषा में भली भाँति समझा देने की क्षमता।

(3) विधर्मियों को उनके सिद्धान्तों की कमी तर्क द्वारा समझाई न कि उनसे झगड़ा मोल लिया। न उन्हें कोई

उलाहना या ताना दिया, न उन्हें लज्जित किया ।

(4) दूसरे धर्मावलम्बियों के आलिमों व नेताओं के लिए कभी अपशब्द नहीं कहे । उनका नाम पूर्ण सम्मान के साथ लिया ।

(5) उनका ज्ञान असीमित व एकदम सही था । उन्होंने कभी भी कोई संदेहात्मक बात नहीं की । वे अपनी बात पूर्ण विश्वास के साथ कहते थे ।

(6) वैदिक-जीवन-सिद्धान्तों को उन्होंने स्वयं अपने जीवन में धारण किया हुआ था और उन पर चलते हुए ही वे दूसरों को सिखाते थे, इसलिए उनकी ओर अँगुली उठाने का कोई अवसर ही न था ।

इसी से लोग उनकी बात तुरन्त मान जाते थे । मैं स्वयं भी उनके उपदेशों से प्रभावित न होकर उनके जीवन से प्रभावित हुआ हूँ जितना भी हुआ हूँ ।

14. महाप्राण : –

अपनी मृत्यु से पाँच वर्ष पूर्व ही उन्होंने बाहर आना-जाना बंद कर दिया था । एक बार दिल्ली में सदर बाज़ार जाते हुए उनकी रिक्शा को पीछे से एक टैक्सी वाले ने जोर की टक्कर लगाई । वे रिक्शा में से उछल कर दूर जा गिरे । बड़ी चोट आई । उस समय उनकी रीढ़ की हड्डी पर भी चोट लग गई थी । तभी से उनके बाँयें हाथ में (कंपन) हो गया था । शुरू-शुरू में उसके ऊपर कोई ध्यान नहीं गया किन्तु वह बढ़ता ही गया । धीरे-धीरे स्नायु-दुर्बलता बढ़ती गई । बाद में इलाज कराने पर भी कुछ न बना । वे इतने कमजोर हो गये कि चलना-फिरना भी मुश्किल हो गया । घर में जगह-जगह रस्सियाँ बाँध लीं, उन्हीं को पकड़ कर उठते थे । चलते भी उन्हीं के सहारे थे । इस कमजोरी की अवस्था में तेजी से बढ़ोतरी इसलिए भी हुई कि वे हापुड़ में अपने को अकेला अनुभव करते थे । धीरे-धीरे

उनकी अवस्था व शरीर इतना कमजोर हो गया कि उन्हें उनकी लड़की ही उठाती-बिठाती थीं, चलाती-फिराती थीं। वे एक जगह घंटे-घंटे खड़े रह जाते थे, चल नहीं पाते थे किन्तु उनकी लड़की उन्हें चलाती थीं। हर समय उनके साथ रहती थीं।

दीवान नर्सिंग होम दिल्ली में अक्तूबर 1967 ई० में उन्हें बुखार चढ़ा। वे अत्यंत कमजोर हो गए। उन्हें गफलत-सी होने लगी। लाला जी पंडित जी की अवस्था देखकर दिल्ली लौट गए थे। उन सब महानुभावो ने पंडित जी के इलाज की व्यवस्था दीवान नर्सिंग होम में की। वहाँ पर डाक्टर एम०एल० शर्मा साहब की देखरेख में इलाज होने लगा। यहाँ जल्दी ही उनका बुखार उतर गया और वे स्वास्थ्य लाभ करने लगे। यहाँ वे दूसरों की सहायता से चलने लगे। पूरे दो महीने यहाँ वे रहे। यहाँ से भी उनका मन उचट गया। उन्हें बच्चों की याद आने लगीं। घर के व्यक्तियों के बीच में जाने के लिए छटपटाने लगे। उनकी इच्छा से उन्हें नर्सिंग होम से दीवान हाल लाया गया। दीवान हाल में नीचे के एक कमरे में उनके रहने की व्यवस्था की गई। यहाँ वे प्रसन्न थे, स्वस्थ नहीं। यहाँ अचानक उन्हें छठे दिन 106 डिग्री बुखार हो गया। वे यहाँ पूर्णतया अचेत अवस्था में चले गये।

सभी डॉक्टर जो उन्हें देखने आये उन्हें अस्पताल में भर्ती करने की बात कही। तुरन्त एम्बुलेंस में लिटा कर उन्हें इर्विन अस्पताल में रात में ही पहुँचाया गया। जैसे कि लापरवाही से यहाँ काम किया जाता है, उन्हें एमरजेंसी वार्ड में ले जाकर डाल दिया। रातभर उन्होंने कुछ नहीं किया। कमर में रीढ़ की हड्डी के पास एक सीखने वाले डॉक्टर ने पंक्चर किया। लाला रामगोपाल जी शाल वाले व श्री वैद्य प्रह्लाद जी पंडित जी के उपचार-प्रयत्नों में जी-जान से जुटे रहे। अगले दिन प्रातः पौन पाँच बजे उनकी बेहोशी टूट गई। प्रातः काल उन्होंने फौरन आँखें खोल दी और अपनी उसी प्रेमभरी आवाज़ में

बोले, ''हाँ बेटा!'' उनकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। वे बोले कि मुझे दूध ने खराब किया था। खैर, दिन निकलते ही उन्हें मैडिकल वार्ड में स्थानांतरित कर दिया गया।

इर्विन अस्पताल का प्रबन्ध बिल्कुल निकम्मा था। न दवाई न दारू; कोई यहाँ किसी को नहीं पूछता। डॉक्टर भी परेशान, मरीज भी परेशान। इसके पश्चात् तुरन्त ही उन्हें दीवान हाल में ले जाने का निश्चय कर लिया। दीवान हाल के अधिकारियों में पंडित जी के रहने की व्यवस्था परन्तु 3.2.1968 ई० को इनकी मृत्यु का समाचार सारी दिल्ली में जंगल की आग की तरह फैल गया। 4 फरवरी को प्रातःकाल यह समाचार रेडियो पर भी प्रसारित किया गया। आर्यसमाज मन्दिर दीवान हाल में प्रातः 8.30 बजे ही पंडित जी का शव लोगों के दर्शनार्थ रख दिया गया था। हज़ारों व्यक्ति उनके अन्तिम दर्शनों के लिए वहाँ एकत्रित हो गये थे। 11.30 बजे से कुछ पूर्व ही उनकी शव-यात्रा प्रारम्भ हुई। दिल्ली के बड़े-बड़े सामाजिक कार्यकर्ता, संसद सदस्य, कांग्रेसी व जनसंघी नेता इस शव यात्रा में सम्मिलित हुए। समाजों ने अपने साप्ताहिक सत्संगों का कार्यक्रम रद्द कर दिया व शव-यात्रा में सम्मिलित होने दीवान हाल पहुँचे।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. शेर-ओ-शायरी
20. गीतांजलि
21. आर्यसमाज
22. ओ३म्
23. गायत्रीरहस्य
24. ज्ञानामृत
25. यज्ञ
26. संत
27. संतवाणी
28. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
29. **Great Thoughts**
30. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)